[2021] 1 उम. नि. प. 382

एम. रविन्द्रन्

बनाम

आसूचना अधिकारी, राजस्व आसूचना निदेशालय

[2020 की दांडिक अपील सं. 699]

26 अक्तूबर, 2020

न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित, मोहन एम. शांतानागौडर और न्यायमूर्ति विनीत सरन

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 167(2), परंतुक (क), स्पष्टीकरण-I [सपठित स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 36क(4) और संविधान, 1950 का अनुच्छेद 21] – विहित अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण करके अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र/चालान फाइल न किया जाना – अभियुक्त द्वारा विहित अवधि की समाप्ति के अगले दिन व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन पर बहस के समाप्त होने के पश्चात् लोक अभियोजक द्वारा सायंकाल में अभियुक्त के विरुद्ध एक अतिरिक्त शिकायत फाइल करके अन्वेषण की अवधि को बढ़ाए जाने का अनुरोध किया जाना – अभियुक्त का व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने का अजेय अधिकार – जहां अभियुक्त ने पहले ही व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया हो, वहां यदि लोक अभियोजक द्वारा बाद में अतिरिक्त शिकायत करते हुए अंतिम रिपोर्ट या समय बढ़ाए जाने के लिए आवेदन फाइल किया जाता है तो व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने के उसके अजेय अधिकार के प्रवर्तन को विफल नहीं किया जा सकता है ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी को स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 22(ग), 23(ग), 25क और 29 के साथ पठित धारा 8(ग) के अधीन दंडनीय अभिकथित अपराध के लिए गिरफ्तार किया गया था और तारीख 4 अगस्त, 2018 को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया था । प्रतिप्रेषण की तारीख से 180 दिन अर्थात् 31 जनवरी, 2019 को पूर्ण होने के पश्चात्

अपीलार्थी (अभियुक्त सं. 11) ने तारीख 1 फरवरी, 2019 को स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन मामलों का अनन्य रूप से विचारण करने के लिए विशेष न्यायालय, चेन्नई ('विचारण न्यायालय') के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(2) के अधीन जमानत के लिए इस आधार पर आवेदन फाइल किया कि अन्वेषण पूर्ण नहीं हुआ है और अभी तक आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया है । जमानत के लिए आवेदन की सुनवाई के अनुक्रम में अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की बहस पूर्ण होने के पश्चात् प्रत्यर्थी/ शिकायकर्ता ने तारीख 1 फरवरी, 2019 को 4.25 बजे अपराह्न में अपीलार्थी के विरुद्ध एक अतिरिक्त शिकायत फाइल की और उक्त आधार पर जमानत के लिए आवेदन को खारिज करने की ईप्सा की । तथापि, विचारण न्यायालय ने जमानत के लिए आवेदन को इस आधार पर मंजूर किया कि न्यायालय को अपीलार्थी के धारा 167(2) की विधायी आज्ञा द्वारा उसे प्रदत्त अजेय अधिकार में हस्तक्षेप करने की कोई शक्ति नहीं है । प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता अर्थात् आसूचना अधिकारी, राजस्व आसूचना निदेशालय ने मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी की जमानत को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए 2019 की दांडिक मूल याचिका सं. 9750 फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा उक्त अपील मंजूर की और परिणामस्वरूप विचारण न्यायालय द्वारा अनुदत्त जमानत के आदेश को रद्द कर दिया । अपीलार्थी ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय के निर्णय को प्रश्नगत करते हुए उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वीकृतत: अपीलार्थी-अभियुक्त ने अपनी गिरफ्तारी के 181वें दिन तारीख 1 फरवरी, 2019 को न्यायालय खुलने के ठीक पश्चात् आवेदन फाइल करके जमानत अभिप्राप्त करने के लिए अपने विकल्प का प्रयोग कर लिया था । यह विवादग्रस्त नहीं है कि लोक अभियोजक ने अपराध में अन्वेषण करने के लिए समय बढ़ाने की ईप्सा करते हुए तारीख 31 जनवरी, 2019 से पूर्व या तारीख 1 फरवरी, 2019 को 10.30 बजे पूर्वाह्न से पूर्व कोई आवेदन फाइल नहीं किया था । लोक अभियोजक ने जमानत के आवेदन पर बहस में उस दिन 4.25 बजे अपराह्न तक भाग लिया था जिस दिन यह आवेदन फाइल किया गया था । केवल उसके

पश्चात् ही अपीलार्थी के विरुद्ध अतिरिक्त शिकायत दर्ज की गई थी । इसलिए, यह समझा जाएगा कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने जमानत के अपने अजेय अधिकार का लाभ उस क्षण उठा लिया था जिस क्षण अर्थात् तारीख 1 फरवरी, 2019 को 10.30 बजे पूर्वाह्न में उसने जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन फाइल किया था और जमानत के आदेश के निबंधनों और शर्तों का पालन करने की प्रस्थापना की थी । वह बाद में अतिरिक्त शिकायत फाइल किए जाने पर भी जमानत पर छोड़े जाने का हकदार था । यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत मामले में राज्य/अन्वेषक अभिकरण ने जमानत पर छोड़े जाने के अभियुक्त के अजेय अधिकार को विफल करने के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए आवेदन पर अपीलार्थी की बहस समाप्त हो जाने के बाद अतिरिक्त शिकायत फाइल की थी । यदि ऐसी परिपाटी को अनुमति दी जाती है, तो धारा 167(2) के अधीन अधिकार निरर्थक हो जाएगा क्योंकि अन्वेषक अधिकारी अभियुक्त द्वारा अपने अधिकार का प्रयोग करने के समय तक अवरोध उत्पन्न कर सकते हैं और जैसे ही जमानत के लिए आवेदन पर निपटारे के लिए विचार किया जाता है तो सुविधापूर्वक अभियुक्त का नाम सम्मिलित करते हुए कोई अतिरिक्त शिकायत फाइल कर सकते हैं । ऐसी शिकायत मात्र अभियुक्त को अभिरक्षा में निरुद्ध रखने के लिए तुच्छ आधारों पर या प्रेरणात्मक हो सकती है, यद्यपि, न्यायालय प्रस्तुत मामले में अतिरिक्त शिकायत के गुणागुण पर टिप्पणी करने से प्रविरत रहता है । अपराध की गंभीरता और उपलब्ध साक्ष्य की विश्वसनीयता को विचार में लाए बिना, न्यायालय के मत में, व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन की मात्र परिवंचना करने के लिए अतिरिक्त शिकायतें फाइल करना एक अनुचित युक्ति है । अत: न्यायालय की सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय ने व्यतिक्रम जमानत के आधार पर अभियुक्त को छोड़े जाने के विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को अपास्त करके न्यायोचित नहीं किया था । हमने यह भी पाया है कि उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष पर पहुंचते समय मामले के गुणागुण में गलत रूप से प्रवेश किया था । उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारण और निकाले गए निष्कर्ष अस्वीकार्य हैं । (पैरा 17, 17.1, 17.2)

अत:, निष्कर्षत: जब एक बार अभियुक्त धारा 167(2) के परंतुक के अधीन जमानत के लिए आवेदन फाइल कर देता है, तो यह समझा जाएगा कि उसने अन्वेषण के लिए अनुबंधित समय-सीमा की समाप्ति के पश्चात् प्रोद्भूत होने वाले व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने के अपने अधिकार का 'लाभ उठा लिया था' या प्रवर्तित कर लिया था । इस प्रकार, यदि अभियुक्त यथास्थिति, 180 दिन या विस्तारित अवधि की समाप्ति के उपरांत स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36क(4) के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत के लिए आवेदन करता है, तो न्यायालय को लोक अभियोजक से आवश्यक जानकारी प्राप्त करके, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, किसी अनावश्यक विलंब के बिना उसे अवश्य छोड़ देना चाहिए । ऐसी त्वरित कार्रवाई अन्वेषक अभिकरण द्वारा किए गए व्यतिक्रम की दशा में अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने के विधायी आदेश को विफल करने में अभियोजन पक्ष को निर्बंधित करेगी । व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने का अधिकार, यदि अभियुक्त ने ऐसी जमानत के लिए आवेदन किया है, जमानत के लिए आवेदन के लंबित रहते हुए ; या अभियोजन पक्ष द्वारा बाद में आरोप पत्र या समय का विस्तार करने की ईप्सा करते हुए न्यायालय के समक्ष कोई रिपोर्ट फाइल कर देने ; या उस अंतराल के दौरान आरोप पत्र फाइल किए जाने पर जब जमानत के लिए आवेदन नामंजूर करने पर दी गई चुनौती किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष लंबित है, प्रवर्तनीय बना रहता है । तथापि, जहां अभियुक्त व्यतिक्रम जमानत के लिए जब उसे यह अधिकार प्रोद्भूत होता है, आवेदन करने में असफल रहता है और बाद में कोई आरोप पत्र, अतिरिक्त शिकायत या समय का विस्तार करने की ईप्सा करते हुए कोई रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, तो व्यतिक्रम जमानत का अधिकार निर्वापित हो जाएगा । मजिस्ट्रेट, यथास्थिति, मामले में संज्ञान लेने या अन्वेषण को पूर्ण करने के लिए और समय प्रदान करने के लिए स्वतंत्र होगा, यद्यपि अभियुक्त को फिर भी दंड प्रक्रिया संहिता के अन्य उपबंधों के अधीन जमानत पर छोड़ा जा सकेगा । धारा 167(2) के स्पष्टीकरण-I के फलस्वरूप न्यायालय द्वारा पारित व्यतिक्रम जमानत का आदेश होते हुए भी, अभियुक्त को वास्तव में अभिरक्षा से छोड़ा

जाना जमानत प्रदान करने वाले सक्षम न्यायालय द्वारा पारित निदेशों पर समाश्रित होता है । यदि अभियुक्त न्यायालय द्वारा अनुबंधित समय के भीतर जमानत देने और/या जमानत आदेश के निबंधनों और शर्तों का पालन करने में असफल रहता है, तो उसका अभिरक्षा में निरोध जारी रहना विधिमान्य है । अतः, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जाती है । (पैरा 18, 18.1, 18.2, 18.3, 18.4 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2020] 2020 एस. सी. सी. ऑन लाइन एस. सी. 824 :
बिक्रमजीत सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 16.3

[2020] 2020 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 529 :
एस. कासी बनाम **राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक, सामयनाल्लुर पुलिस थाना मदुरै, जिला** ; 11.7

[2017] (2017) 15 एस. सी. सी. 67 :
राकेश कुमार पाल बनाम **असम राज्य** ; 11.6,12.4,12.7

[2015] (2015) 8 एस. सी. सी. 340 :
रवि प्रकाश सिंह उर्फ **अरविंद सिंह** बनाम **बिहार राज्य** ; 7

[2014] (2014) 9 एस. सी. सी. 457 :
भारत संघ बनाम **निराला यादव** ; 15.4,16.2

[2012] (2012) 12 एस. सी. सी. 1 :
सय्यद मोहम्मद अहमद काजमी बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली सरकार)** ; 15.3,16.2

[2011] (2011) 10 एस. सी. सी. 445 :
प्रज्ञा सिंह ठाकुर बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 16,16.1,16.2

[2009] (2009) 7 एस. सी. सी. 480 :
मुस्ताक अहमद मोहम्मद इसाक बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 15.2

[2005] (2005) 7 एस. सी. सी. 29 :
अतीफ नासीर मुल्ला बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 15.2

[2001] (2001) 5 एस. सी. सी. 453 : 4,10.2,11,12.2,12.3,12.4,
उदय मोहन लाल आचार्य बनाम **महाराष्ट्र** 12.6,13,15.1,
राज्य ; 15.4,16,16.2

[1996] (1996) 1 एस. सी. सी. 722 :
मोहम्मद इकबाल मदर शेख बनाम
महाराष्ट्र राज्य ; 10,15,15.1

[1996] (1996) 1 एस. सी. सी. 718 :
डा. विपिन शांतिलाल पांचाल बनाम
गुजरात राज्य ; 10,15.1

[1996] (1996) 1 एस. सी. सी. 432 :
राज्य, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत बनाम
मोहम्मद अशरफ्त भट ; 10,15.2

[1995] [1995] 2 उम. नि. प. 285 = (1994) 5 एस.
सी. सी. 410 : 10,12.1,12.2,
संजय दत्त बनाम **राज्य, केंद्रीय अन्वेषण** 12.3,12.4,14,14.1,
ब्यूरो की मार्फत ; 15,15.1,15.2,15.3,15.4,16,16.2

[1995] [1995] 2 उम. नि. प. 104 = (1994) 4 एस.
सी. सी. 602 : 10,12,12.1,
हितेन्द्र विष्णु ठाकुर बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 12.4,14,14.1

[1979] [1979] 1 उम. नि. प. 243 = (1978) 1 एस.
सी. सी. 248 :
मेनका गांधी बनाम **भारत संघ** । 11.1

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2020 की दांडिक अपील सं. 699.

2019 की दांडिक मूल याचिका सं. 9750 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 21 नवंबर, 2019 के निर्णय के विरुद्ध अपील ।

हाजिर होने वाले पक्षकारों की ओर से सुश्री अरुणिमा सिंह और श्री अमन लेखी, अपर महा-सालिसिटर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मोहन एम. शांतानागौडर ने दिया ।

न्या. शांतानागौडर – इजाजत दी गई ।

2. इस अपील में 2019 की दांडिक मूल याचिका सं. 9750 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 21 नवम्बर, 2019 को पारित किए गए निर्णय को चुनौती दी गई है ।

3. इस अपील को फाइल करने के लिए तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित हैं :–

3.1 अपीलार्थी को स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 22(ग), 23(ग), 25क और 29 के साथ पठित धारा 8(ग) के अधीन दंडनीय अभिकथित अपराध के लिए गिरफ्तार किया गया था और तारीख 4 अगस्त, 2018 को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया था । प्रतिप्रेषण की तारीख से 180 दिन अर्थात् 31 जनवरी, 2019 को पूर्ण होने के पश्चात् अपीलार्थी (अभियुक्त सं. 11) ने तारीख 1 फरवरी, 2019 को स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन मामलों का अनन्य रूप से विचारण करने के लिए विशेष न्यायालय, चेन्नई ('विचारण न्यायालय') के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(2) के अधीन जमानत के लिए इस आधार पर आवेदन फाइल किया कि अन्वेषण पूर्ण नहीं हुआ है और अभी तक आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया है । तद्नुसार, विचारण न्यायालय तारीख 5 फरवरी, 2019 को उक्त न्यायालय के समक्ष लंबित 2017 के आर. आर. सं. 09 में 2019 के दांडिक प्रकीर्ण आवेदन सं. 131 में जमानत का आदेश अनुदत्त किया गया ।

3.2 प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता अर्थात् आसूचना अधिकारी, राजस्व आसूचना निदेशालय ने मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी की जमानत को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए 2019 की दांडिक मूल याचिका सं. 9750 फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा उक्त अपील मंजूर की और परिणामस्वरूप विचारण न्यायालय द्वारा अनुदत्त जमानत के आदेश को रद्द कर दिया । अपीलार्थी ने

व्यथित होकर उच्च न्यायालय के निर्णय को प्रश्नगत करते हुए इस न्यायालय में समावेदन किया है ।

3.3 यह विवादग्रस्त नहीं है कि अपीलार्थी को तारीख 4 अगस्त, 2018 को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन अंतिम रिपोर्ट फाइल करने के लिए विहित 180 दिन की आज्ञापक अवधि (प्रतिप्रेषण की तारीख को अपवर्जित करके) तारीख 31 जनवरी, 2019 को पूर्ण हो गई थी । यह बात ग्रीगोरियन कलैंडर के अनुसार दिनों की गणना से निम्नलिखित अनुसार पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है :–

"अगस्त, 2018 (5 अगस्त, 2018 से
31 अगस्त, 2018 तक) = 27 दिन
सितम्बर, 2018 = 30 दिन
अक्तूबर, 2018 = 31 दिन
नवम्बर, 2018 = 30 दिन
दिसम्बर, 2018 = 31 दिन
जनवरी, 2019 = 31 दिन
कुल = 180 दिन"

3.4 तद्नुसार, अपीलार्थी ने तारीख 1 फरवरी, 2019 को 10.30 बजे पूर्वाह्न में विचारण न्यायालय के समक्ष जमानत का अपना आवेदन फाइल किया । जमानत के लिए आवेदन की सुनवाई के अनुक्रम में अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की बहस पूर्ण होने के पश्चात् प्रत्यर्थी/शिकायकर्ता ने तारीख 1 फरवरी, 2019 को 4.25 बजे अपराह्न में अपीलार्थी के विरुद्ध एक अतिरिक्त शिकायत फाइल की और उक्त आधार पर जमानत के लिए आवेदन को खारिज करने की ईप्सा की । तथापि, विचारण न्यायालय ने जमानत के लिए आवेदन को इस आधार पर मंजूर किया कि न्यायालय को अपीलार्थी के धारा 167(2) की विधायी आज्ञा द्वारा उसे प्रदत्त अजेय अधिकार में हस्तक्षेप करने की कोई शक्ति नहीं है ।

3.5 उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के उक्त निर्णय को

इस आधार पर अपास्त कर दिया गया कि अतिरिक्त शिकायत तारीख 1 फरवरी, 2019 को ही फाइल कर दी गई थी और चूंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत के लिए आवेदन का अतिरिक्त शिकायत फाइल किए जाने के समय तक निपटारा नहीं किया गया था, इसलिए, अपीलार्थी इस तथ्य का फायदा नहीं उठा सकता था कि उसने जमानत के लिए अपना आवेदन समय के हिसाब से पहले फाइल किया था । उच्च न्यायालय ने यह भी कारण दिया कि सेशन न्यायालय अपने बैठने के समय से लेकर अपने उठने के समय तक कार्य करता है और इसलिए अपीलार्थी 10.30 बजे पूर्वाह्न में आवेदन फाइल करने के आधार पर कोई विनिर्दिष्ट फायदा नहीं उठा सकता था क्योंकि अतिरिक्त शिकायत जमानत के लिए आवेदन की सुनवाई के दौरान, उस दिन न्यायालय के उठने से पूर्व, फाइल की गई थी ।

4. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल सुश्री अरुणिमा सिंह ने अभिलेख पर की सामग्री की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया और **उदय मोहन लाल आचार्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की मताभिव्यक्तियों का जोरदार अवलंब लिया और यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के आदेश का गलत अर्थान्वयन किया है और मामले के गुणागुण पर जाकर गंभीर गलती की है ; उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के आदेश का गलत अर्थान्वयन किया गया है और मामले के गुणागुण पर जाकर गंभीर गलती की है ; उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) द्वारा प्रदत्त विधायी आदेश को हल्केपन से अस्वीकार कर दिया गया, यद्यपि अपीलार्थी ने 180 दिन की कानूनी अवधि के पूर्ण होने के पश्चात् और वह भी प्रत्यर्थी द्वारा आरोप पत्र/अतिरिक्त शिकायत फाइल करने से पूर्व इसके उपबंधों का ठीक ही अवलंब लिया था ; और यह कि अन्वेषण प्राधिकारी द्वारा बाद में आरोप पत्र/अतिरिक्त शिकायत फाइल करके अपीलार्थी के अजेय अधिकार को विफल नहीं किया जा सकता था ।

---

[1] (2001) 5 एस. सी. सी. 453.

5. इसके विपरीत, विद्वान् अपर महा-सालिसिटर श्री अमन लेखी ने उच्च न्यायालय के निर्णय का यह दलील देते हुए समर्थन किया कि अतिरिक्त शिकायत तब फाइल की गई थी जब अपीलार्थी अभी भी अभिरक्षा में था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत के लिए आवेदन का निपटारा करने से पूर्व फाइल की गई थी, इसलिए अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा जमानत देने का प्रश्न ही नहीं था और परिणामस्वरूप वह अभिरक्षा में निरुद्ध रखे जाने के लिए दायी था । उन्होंने यह दलील दी कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन फाइल जमानत के लिए आवेदन के निपटारे का समय या तारीख यह न्यायनिर्णयन करने के लिए निर्णायक बात है कि क्या अभियुक्त व्यतिक्रम जमानत का हकदार है या नहीं ।

6. आगे अग्रसर होने से पूर्व, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के उपबंधों का उल्लेख करना सुसंगत है :–

> "वह मजिस्ट्रेट, जिसके पास अभियुक्त व्यक्ति इस धारा के अधीन भेजा जाता है, चाहे उस मामले के विचारण की उसे अधिकारिता हो या न हो, अभियुक्त का ऐसी अभिरक्षा में, जैसी वह मजिस्ट्रेट ठीक समझे इतनी अवधि के लिए, जो कुल मिलाकर पंद्रह दिन से अधिक न होगी, निरुद्ध किया जाना समय-समय पर प्राधिकृत कर सकता है तथा यदि उसे मामले के विचारण की या विचारण के लिए सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है और अधिक निरुद्ध रखना उसके विचार में अनावश्यक है तो वह अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास, जिसे ऐसी अधिकारिता है, भिजवाने के लिए आदेश दे सकता है :
>
> परंतु –
>
> (क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का पुलिस अभिरक्षा से अन्यथा निरोध पंद्रह दिन की अवधि से आगे के लिए उस दशा में प्राधिकृत कर सकता है जिसमें उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार है, किंतु कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का इस पैरा के अधीन अभिरक्षा में निरोध, –

(i) कुल मिलाकर नब्बे दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अन्वेषण ऐसे अपराध के संबंध में है जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास से दंडनीय है ;

(ii) कुल मिलाकर साठ दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध के संबंध में है,

और, यथास्थिति, नब्बे दिन या साठ दिन की अवधि की समाप्ति पर यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा और यह समझा जाएगा कि इस उपधारा के अधीन जमानत पर छोड़ा गया प्रत्येक व्यक्ति अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिए उस अध्याय के उपबंधों के अधीन छोड़ा गया है ;

(ख) कोई मजिस्ट्रेट इस धारा के अधीन किसी अभियुक्त का पुलिस अभिरक्षा में निरोध तब तक प्राधिकृत नहीं करेगा जब तक कि अभियुक्त उसके समक्ष पहली बार और तत्पश्चात् हर बार, जब तक अभियुक्त पुलिस की अभिरक्षा में रहता है, व्यक्तिगत रूप से पेश नहीं किया जाता है किंतु मजिस्ट्रेट अभियुक्त के या तो व्यक्तिगत रूप से या इलैक्ट्रानिक दृश्य संपर्क के माध्यम से पेश किए जाने पर न्यायिक अभिरक्षा में निरोध को और बढ़ा सकेगा ।

(ग) कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त विशेषतया सशक्त नहीं किया गया है, पुलिस की अभिरक्षा में निरोध प्राधिकृत न करेगा ।

स्पष्टीकरण 1 – शंकाएं दूर करने के लिए इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि पैरा (क) में विनिर्दिष्ट अवधि समाप्त हो जाने पर भी अभियुक्त-व्यक्ति तब तक अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जब तक कि वह जमानत नहीं दे देता है ।

स्पष्टीकरण 2 – यदि प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई अभियुक्त-व्यक्ति मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था, जैसा कि पैरा (ख) के अधीन अपेक्षित है, तो अभियुक्त-व्यक्ति की पेशी को, यथास्थिति, निरोध प्राधिकृत करने वाले आदेश पर उसके हस्ताक्षर से या मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त व्यक्ति की इलैक्ट्रानिक दृश्य संपर्क के माध्यम से पेशी के बारे में प्रमाणित आदेश द्वारा साबित किया जा सकता है :

परंतु यह और कि अठारह वर्ष से कम आयु की स्त्री की दशा में, किसी प्रतिप्रेषण गृह या मान्यताप्राप्त सामाजिक संस्था की अभिरक्षा में निरोध किए जाने को प्राधिकृत किया जाएगा ।"

सामान्य विधिक बोलचाल में, धारा 167(2) के परंतुक के अधीन जमानत के अधिकार को सामान्य तौर पर 'व्यतिक्रम जमानत' या 'बाध्यकारी जमानत' कहा जाता है क्योंकि यह जमानत, मामले के गुणागुण पर विचार किए बिना, विहित समय के भीतर अन्वेषण पूर्ण न करने में अन्वेषणक अभिकरण के दोष के कारण अनुदत्त की जाती है ।

6.1 इस मामले के प्रयोजन के लिए स्वापक ओषधि और मन:-प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36(4) का उल्लेख करना भी सुसंगत है :–

"धारा 36क. विशेष न्यायालयों द्वारा विचारणीय अपराध –

(4) धारा 19 या धारा 24 या धारा 27 के अधीन दंडनीय किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्तियों के संबंध में या वाणिज्यिक मात्रा से संबंधित अपराधों के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 167 की उपधारा (2) में 'नब्बे दिन' के प्रति निर्देशों का, जहां-जहां वे आते हैं, यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे 'एक सौ अस्सी दिन' के प्रति निर्देश हैं :

परंतु यदि अन्वेषण को, उक्त एक सौ अस्सी दिन की अवधि के भीतर पूरा करना संभव नहीं है, तो विशेष न्यायालय उक्त अवधि को लोक अभियोजक की अन्वेषण की प्रगति और उक्त एक सौ अस्सी दिन की अवधि से परे अभियुक्त के निरोध के लिए

विनिर्दिष्ट कारणों को उपदर्शित करने वाली रिपोर्ट पर एक वर्ष तक बढ़ा सकेगा ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

6.2 स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36क इसमें उपदर्शित अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता के उपांतरित उपयोजन को विहित करती है । स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36क के उपखंड (4) का आशय यह अपेक्षा करना है कि स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन कतिपय अपराधों का अन्वेषण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन यथा उपबंधित 90 दिनों की बजाय 180 दिनों की अवधि के भीतर पूर्ण किया जाए । इसलिए अतिरिक्त समय-सीमा का फायदा अधिक गंभीर प्रवर्ग के अपराधों का अन्वेषण करने के लिए दिया गया है । इसे इस एक और परंतुक द्वारा बढ़ाया गया है कि विशेष न्यायालय अन्वेषण के लिए विहित समय को एक वर्ष तक बढ़ा सकेगा यदि लोक अभियोजक द्वारा अन्वेषण की प्रगति और 180 दिन की विहित अवधि से परे अभियुक्त के निरोध के लिए विनिर्दिष्ट कारणों का उपदर्शित करने वाली रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है । प्रस्तुत मामले में, यह स्वीकृत बात है कि लोक अभियोजक ने 180 दिन के भीतर ऐसी कोई रिपोर्ट विचारण न्यायालय के समक्ष अंतिम रिपोर्ट/अतिरिक्त शिकायत फाइल करने के लिए एक वर्ष तक के लिए समय का विस्तार करने की ईप्सा करते हुए फाइल नहीं की थी । पूर्वोल्लिखित से यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी के मामले में अंतिम रिपोर्ट प्रतिप्रेषण की प्रथम तारीख से 180 दिन के भीतर फाइल की जानी अपेक्षित थी ।

7. इस न्यायालय ने कई सारे निर्णयों में, जिनमें **रवि प्रकाश सिंह** उर्फ **अरविंद सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाला मामला भी है, यह विनिर्णय दिया है कि धारा 167(2) के अधीन अवधि की संगणना करते समय उस दिन को, जिस दिन अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया था, अपवर्जित किया जाना चाहिए और उस दिन को, जिस दिन

---

[1] (2015) 8 एस. सी. सी. 340.

न्यायालय में चालान/आरोप पत्र फाइल किया जाता है, सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

8. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह विवादग्रस्त नहीं है कि पूर्वोल्लिखित कानूनी उपबंधों और इस न्यायालय के निर्णयों के अनुपालन में अपीलार्थी ने प्रतिप्रेषण की तारीख (प्रतिप्रेषण के दिन को अपवर्जित करते हुए) से 180 दिन तक प्रतीक्षा की और उसके पश्चात् तारीख 1 फरवरी, 2019 को 10.30 बजे पूर्वाह्न में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत के लिए आवेदन फाइल किया क्योंकि तारीख 31 जनवरी, 2019 तक या तारीख 1 फरवरी, 2019 को 10.30 बजे पूर्वाह्न तक शिकायतकर्ता ने अभी तक अपीलार्थी के विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट/अतिरिक्त शिकायत फाइल नहीं की थी । उसी दिन, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जमानत के लिए आवेदन पर सुनवाई के अनुक्रम में प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता ने 4.25 बजे अपराह्न में एक अतिरिक्त शिकायत फाइल की थी और इस प्रकार जमानत के लिए आवेदन को खारिज करने की ईप्सा की थी ।

9. अत: इस मामले में विनिश्चित किए जाने वाले प्रश्न ये हैं :–

(क) क्या अपीलार्थी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन प्रोद्भूत होने वाला अजेय अधिकार बाद में अन्वेषक अभिकरण द्वारा अतिरिक्त शिकायत फाइल करने से निर्वापित हो गया था :

(ख) क्या न्यायालय को (क) का उत्तर देते हुए अन्वेषक अभिकरण के व्यतिक्रम पर आधारित जमानत के लिए आवेदन फाइल करने के समय को ध्यान में रखना चाहिए या जमानत के लिए आवेदन का निपटारा करने के समय को ध्यान में रखना चाहिए ।

I. उदय मोहन लाल आचार्य वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत

10. सुसंगत विधिशास्त्र का परिशीलन करने पर हम श्री लेखी की दलील से सहमत नहीं हैं । बल्कि, हम यह पाते हैं कि ऊपर उल्लिखित दोनों प्रश्नों (क) और (ख) का उत्तर उदय मोहनलाल आचार्य (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की बहुमत राय द्वारा इस प्रकार मत व्यक्त करते हुए दिया गया था :–

"13. ..... यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यह अजेय अधिकार, यदि पहले इसका फायदा नहीं उठाया गया है, तो चालान फाइल करने पर यह बचा या बना नहीं रहता है, जैसा कि संजय दत्त (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है । अत: निर्णायक प्रश्न जो विचार के लिए उद्भूत होता है, यह है कि 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है' अभिव्यक्ति का सही अर्थ क्या है ? क्या इसका यह अर्थ है कि अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन करे और जमानत पर छोड़े जाने के लिए अपनी रजामंदी दे या क्या इसका यह अर्थ है कि जमानत आदेश अवश्य पारित किया जाना चाहिए, अभियुक्त अवश्य जमानत दे और अपने को जमानत पर छुड़वाए ? हमारी सुविचारित राय में, यह अभिनिर्धारित करना विधायी आज्ञा के अधिक अनुरूप होगा कि यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि जिस क्षण अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन फाइल करता है और जमानत के निबंधनों और शर्तों का पालन करने की प्रस्थापना करता है, उसने अवश्य अपने अजेय अधिकार का लाभ उठा लिया था । 'लाभ उठाया गया है' अभिव्यक्ति का निर्वचन अपेक्षित आवश्यक जमानत देने के पश्चात् वास्तव में जमानत पर छोड़े जाने का अर्थ लगाने के लिए करने से अभियुक्त के साथ अत्यधिक अन्याय कारित होगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक का प्रयोजन ही विफल हो जाएगा और इसके अतिरक्त एक अवैध अभिरक्षा वैध बन जाएगी, क्योंकि अनुबंधित अवधि के पर्यवसान के पश्चात् मजिस्ट्रेट को प्रतिप्रेषण करने की आगे कोई अधिकारिता नहीं है और अभियुक्त की ऐसी अभिरक्षा प्रतिप्रेषण के किसी वैध आदेश के बिना हो जाती है । इसके अतिरिक्त, जब अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन उसमें छोड़े जाने के अपने अधिकार को उपदर्शित करते हुए इसलिए फाइल करता है चूंकि विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई चालान फाइल नहीं किया गया था, तब मजिस्ट्रेट के पास कोई विवेकाधिकार नहीं रह जाता है और उससे इस बात का पता लगाने की अपेक्षा की जाती

है कि क्या कानून के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि व्यतीत हो गई है या नहीं, और क्या कोई चालान फाइल किया गया है या नहीं । यदि 'लाभ उठाया गया है' अभिव्यक्ति का निर्वचन यह अर्थ लगाने के लिए किया जाए कि अभियुक्त को अवश्य वास्तविक रूप में जमानत पर छोड़ा जाना चाहिए, तब किसी प्रस्तुत मामले में जहां मजिस्ट्रेट धारा 167 में अनुबंधित अधिकतम अवधि का पर्यवसान होते हुए भी आदेश पारित करने से अवैध रूप से इनकार कर देता है और अभी कोई चालान फाइल नहीं किया गया हो, तब अभियुक्त केवल उच्चतर न्यायालय में समावेदन फाइल कर सकता है और जब उच्चतर न्यायालय में मामला विचार के लिए लंबित हो, यदि अभियोजन पक्ष आरोप पत्र फाइल कर देता है तब भी अभियुक्त को प्रोद्भूत तथाकथित अधिकार अन्वेषण अभिकरण की निष्क्रियता के कारण विफल हो जाएगा । चूंकि विधानमंडल ने अपना अधिदेश दिया है, इसलिए इस अधिकार को प्रवर्तित करने के लिए न्यायालय का आबद्धकारी कर्तव्य होगा और 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है' अभिव्यक्ति का निर्वचन इस रीति में करके जिससे कि अभियोजन पक्ष द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा सकता है, इस अधिकार से इनकार करना न्याय के हित में नहीं होगा .....।

..... दंड प्रक्रिया संहिता में, धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक में उपदर्शित अवधि के पर्यवसान के पश्चात् इसके स्पष्टीकरण 1 में उपदर्शित आकस्मिकता के सिवाय अर्थात् यदि अभियुक्त जमानत प्रस्तुत नहीं करता है, अभियुक्त के निरोध को प्राधिकृत करने के लिए कोई उपबंध नहीं है । इसी अभिप्राय से यह उल्लेख किया जा सकता है कि यदि अवधि की समाप्ति के पश्चात् जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन फाइल किया जाता है और अभियुक्त जमानत देने की प्रस्थापना करता है और तद्द्वारा अपने अजेय अधिकार का फायदा उठाता है और फिर कतिपय निबंधनों और शर्तों पर जमानत का आदेश पारित किया जाता है किंतु अभियुक्त जमानत देने में असफल रहता है और उस सुसंगत समय पर चालान फाइल कर दिया जाता है तब संभवत: यह कहा जा

> सकता है कि अभियुक्त का अधिकार निर्वापित हो गया था । किंतु जैसे ही अभियुक्त आवेदन फाइल कर देता है और न्यायालय के समुचित आदेशों द्वारा छोड़े जाने के लिए आवेदन में जमानत देने की प्रस्थापना उपदर्शित करता है तब जमानत पर छोड़े जाने के अभियुक्त के अधिकार को मजिस्ट्रेट की इस संभावना के आधार पर विफल नहीं किया जा सकता है कि यह उपलब्ध नहीं है और यह कि मामले में समावेदन नहीं किया गया था या मजिस्ट्रेट ने आदेश पारित करने से गलत रूप से इनकार किया था और मामला उच्चतर न्यायालय में ले जाया गया है और इसी अंतराल में चालान फाइल कर दिया गया है । यही केवल एक तरीका है जब विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर चालान फाइल करने में अभियोजन पक्ष के असफल रहने पर अभियुक्त के तथाकथित अजेय अधिकार और अभियोजन अभिकरण की ओर से की गई निष्क्रियता के कारण अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने से विधिपूर्वक रोकते हुए बृहत्त समाज के हित के बीच संतुलन बनाया जा सकता है ।
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए इस न्यायालय ने व्यतिक्रम जमानत के लिए अभियुक्त के अधिकार पर कई सारे निर्णयों पर विचार किया और चर्चा की जिनमें **संजय दत्त** बनाम **राज्य, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत**[1]; **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2]; **राज्य, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत** बनाम **मोहम्मद अशरफ्त भट**[3]; **डा. विपिन शांतिलाल पांचाल** बनाम **गुजरात राज्य**[4] और **मोहम्मद इकबाल मदर शेख** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[5] वाले मामले सम्मिलित हैं ।

10.1 हम वर्तमान प्रयोजन के लिए उक्त निर्णय में इस न्यायालय

---

[1] [1995] 2 उम. नि. प. 285 = (1994) 5 एस. सी. सी. 410.

[2] [1995] 2 उम. नि. प. 104 = (1994) 4 एस. सी. सी. 602.

[3] (1996) 1 एस. सी. सी. 432.

[4] (1996) 1 एस. सी. सी. 718.

[5] (1996) 1 एस. सी. सी. 722.

के निम्नलिखित निष्कर्षों को भी उद्धृत करना सुसंगत समझते हैं :–

"13.3 यथास्थिति, 90 दिन या 60 दिन की उक्त अवधि का पर्यवसान होने पर अन्वेषण अभिकरण द्वारा विहित अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करने में व्यतिक्रम करने के कारण अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने के लिए उसके पक्ष में एक अजेय अधिकारी प्रोद्भूत होता है और अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है, यदि वह मजिस्ट्रेट द्वारा दिए गए निदेश के अनुसार जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत प्रस्तुत कर देता है ।

13.4 जब किसी अभियुक्त द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण करने में अन्वेषक अभिकरण की ओर से किए गए व्यतिक्रम के कारण उसके पक्ष में अभिकथित रूप से प्रोद्भूत अपने अजेय अधिकार के प्रवर्तन के लिए जमानत हेतु आवेदन फाइल किया जाता है, तो मजिस्ट्रेट/न्यायालय को इस बात का समाधान हो जाने पर कि वास्तव में अभियुक्त 90 दिन या 60 दिन की यथा विनिर्दिष्ट अवधि के लिए अभिरक्षा में रहा है और अन्वेषक अभिकरण द्वारा कोई आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया है, अवश्य तुरंत इसका निपटारा करना चाहिए । मजिस्ट्रेट/न्यायालय की ओर से की गई ऐसी त्वरित कार्रवाई से अभियोजन पक्ष अधिनियम के उद्देश्य और अनुबंधित अवधि के भीतर अन्वेषण पूर्ण करने में अन्वेषक अभिकरण की ओर से किए गए व्यतिक्रम के कारण अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने के विधायी आदेश को विफल करने में समर्थ नहीं होगा ।

13.5 यदि अभियुक्त, मजिस्ट्रेट द्वारा यथा निदेशित, जमानत देने में असमर्थ है तो धारा 167 की उपधारा 2 के स्पष्टीकरण और परंतुक का संयुक्त पठन करने पर पैरा (क) में विनिर्दिष्ट अवधि के परे भी अभियुक्त की जारी अभिरक्षा अप्राधिकृत नहीं होगी और इसलिए यदि उस अवधि के दौरान अन्वेषण पूर्ण हो जाता है और आरोप पत्र फाइल किया जाता है तब अभियुक्त का तथाकथित अजेय अधिकार निर्वापित हो जाएगा ।

13.6 **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रयुक्त 'यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है' अभिव्यक्ति को यह अर्थ लगाने के लिए समझा जाना चाहिए कि जब अभियुक्त आवेदन फाइल करता है और निदेश दिए जाने पर जमानत देने के लिए तैयार है । दूसरे शब्दों में, धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के पैरा (क) में विनिर्दिष्ट अवधि का पर्यवसान होने पर यदि अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन फाइल करता है और निदेश दिए जाने पर जमानत देने की भी प्रस्थापना करता है, तब यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने अपने अजेय अधिकार का लाभ उठा लिया था, भले ही न्यायालय ने उक्त आवेदन पर विचार न किया हो और जमानत के निबंधनों और शर्तों को उपदर्शित न किया हो और अभियुक्त ने इसे प्रस्तुत न किया हो ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

10.2 **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभियुक्त द्वारा फाइल किया गया व्यतिक्रम जमानत का आवेदन मजिस्ट्रेट द्वारा इस गलत धारणा के आधार पर नामंजूर कर दिया गया था कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) महाराष्ट्र (वित्तीय स्थापनों में) निक्षेपकों के हितों की संरक्षा अधिनियम, 1999 से संबंधित मामलों पर लागू नहीं होती है । आरोप पत्र तब फाइल किया गया था जब जमानत की नामंजूरी को चुनौती देने वाला आवेदन उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित था । अत: उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि व्यतिक्रम जमानत का अधिकार प्रवर्तनीय नहीं रह गया था । पूर्वोल्लिखित सिद्धांतों के आधार पर बहुमत की राय से यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह समझा जाएगा कि अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन व्यतिक्रम जमानत के अपने अधिकार का उस समय प्रयोग कर लिया था जिस क्षण उसने जमानत के लिए आवेदन फाइल किया था और जमानत के निबंधनों और शर्तों का पालन करने की प्रस्थापना की थी । जब जमानत का आवेदन मजिस्ट्रेट या किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचार या अंतिम रूप से निपटारे के

लिए लंबित है, तो अभियोजन पक्ष बाद में आरोप पत्र या अतिरिक्त शिकायत फाइल करके दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के उद्देश्य को विफल नहीं कर सकता है । तद्नुसार, इस न्यायालय ने उस मामले में अपीलार्थी-अभियुक्त को राहत प्रदान की ।

तथापि, यह प्रतीत होता है कि **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत द्वारा उल्लिखित निष्कर्षों के बावजूद इस बारे में भ्रम जारी रहा, विशिष्ट रूप से विनिश्चय के पैरा 13.5 और 13.6 की बाबत, कि किन विनिर्दिष्ट स्थितियों में व्यतिक्रम जमानत प्रदान की जानी चाहिए । अत: सभी संदेहों को दूर करने के प्रयोजनार्थ हम उन परिस्थितियों को स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं जिनमें अभियुक्त द्वारा इस हकदारी का दावा किया जा सकेगा ।

II. धारा 167(2) तथा प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का मूल अधिकार

11. इससे पूर्व कि हम इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों द्वारा निर्वचन किए गए अनुसार धारा 167(2) के अधीन व्यतिक्रम जमानत के अधिकार के मानदंडों का विस्तार करने के लिए अग्रसर हों, हम व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार और उससे वंचित करने के प्रभाव पर **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों का उल्लेख करना समीचीन समझते हैं :–

> "13. ..... दैहिक स्वतंत्रता भारतीय संविधान के पोषित उद्देश्यों में से एक है और इससे केवल विधि के अनुसार और इसके उपबंधों के अनुरूप वंचित किया जा सकता है, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन अनुबंधित है । जब विधि में यह उपबंधित है कि मजिस्ट्रेट अभियुक्त को अभिरक्षा में धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक में यथाउपदर्शित अधिकतम अवधि के लिए प्राधिकृत कर सकता है, तो अन्वेषक अधिकरण द्वारा कोई चालान फाइल किए बिना इस अवधि से परे और आगे निरुद्ध रखना एक चालबाजी होगी और वह विधि के अनुसार तथा दंड प्रक्रिया संहिता के अनुरूप नहीं होगा और इसलिए इससे संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण हो सकता है ।"

11.1 भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में यह उपबंधित है कि "किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं" । **मेनका गांधी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ द्वारा यह स्थिर किया गया है कि ऐसी प्रक्रिया मनमानी, अनुचित या अयुक्तियुक्त नहीं हो सकती है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधिनियमन का इतिहास और इस धारा के परंतुक में अंतर्विष्ट 'व्यतिक्रम जमानत' का रक्षोपाय अनुच्छेद 21 से अंतर्निहित रूप से संबद्ध है और यह और कुछ नहीं अपितु सांविधानिक रक्षोपाय का यह एक विधायी प्रदर्शन है कि किसी व्यक्ति को विधि की व्यवस्था के अनुसार के सिवाय निरुद्ध नहीं किया जाएगा ।

11.2 दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 ('1898 की संहिता') जो इस दंड संहिता के अधिनियमन से पूर्व प्रवृत्त थी, की धारा 167 के अधीन वह अधिकतम अवधि, जिसके लिए किसी अभियुक्त को अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया जा सकता था, 15 दिन थी । तथापि, चूंकि जटिल अन्वेषणों को 15 दिन के भीतर पूरा करना प्राय: अव्यवहार्य था, इसलिए एक परिपाटी उद्भूत हुई जिसमें अन्वेषक अधिकारी प्रतिप्रेषण की अवधि के समाप्त होने के पश्चात् 'प्रारंभिक आरोप पत्र' फाइल करते थे । इसके पश्चात् राज्य मजिस्ट्रेट से विचारण के आरंभ के स्थगन और 1898 की संहिता की धारा 344 के अधीन अन्वेषण पूर्ण होने के समय तक और अंतिम आरोप पत्र फाइल किए जाने तक अभियुक्त का और आगे प्रतिप्रेषण प्राधिकृत करने का अनुरोध करते थे । भारत के विधि आयोग ने न्यायिक प्रशासन के सुधार (वॉल्यूम II, 1948, पृष्ठ 758-760) पर रिपोर्ट सं. 14 में यह उल्लेख किया था कि बहुत से मामलों में न्यायालयों के समक्ष कोई अंतिम रिपोर्ट फाइल किए बिना अभियुक्त कई महीनों तक अभिरक्षा में सड़ रहे हैं । यह भी उल्लेख किया गया कि न्यायिक राय में इस बारे में अंतर्विरोध है कि क्या मजिस्ट्रेट तब अभियुक्त को छोड़ने के लिए आबद्ध है यदि 15 दिन के भीतर पुलिस

---

[1] [1979] 1 उम. नि. प. 243 = (1978) 1 एस. सी. सी. 248.

रिपोर्ट फाइल नहीं की जाती है । इसलिए विधि आयोग ने रिपोर्ट सं. 14 में 15 दिन की समाप्ति के पश्चात् प्रतिप्रेषण जारी रहने का विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध करते हुए एक समुचित उपबंध की इस रीति में आवश्यकता की सिफारिश की कि "गंभीर अपराध के मामलों में पूर्ण और उचित अन्वेषण की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता का रक्षोपाय भी करना होगा । इसके अतिरिक्त, यह कि विधानमंडल को वह अधिकतम समय अवधि विहित करनी चाहिए जिससे परे अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष पुलिस रिपोर्ट फाइल किए बिना निरुद्ध न किया जा सके । यह उल्लेख किया गया था कि इंग्लैंड में देशद्रोह जैसे गंभीर अपराधों के अभियुक्त व्यक्ति को भी विचारण आरंभ होने तक अनिश्चित काल के लिए कारागार में निरुद्ध नहीं किया जा सकता है ।

11.3 रिपोर्ट सं. 14 में दिए गए सुझाव को विधि आयोग द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 पर रिपोर्ट सं. 41 (वॉल्यूम I, 1969, पृष्ठ 76-77) में दोहराया गया था । विधि आयोग ने धारा 167 के अधीन विहित कानूनी अवधि से परे अभियुक्त को प्रतिप्रेषित करने के लिए 'प्रारंभिक रिपोर्ट' फाइल करके 1898 की संहिता की धारा 344 के दुरुपयोग के विरुद्ध रक्षा की आवश्यकता पर पुन: बल दिया । यह उल्लेख किया गया था कि इसका उन मामलों में गंभीर दुरुपयोग किया जा सकता है, जिनमें "गिरफ्तार व्यक्ति को इस रीति में अनिश्चित काल के लिए अभिरक्षा में रखा जा सकता है जब अन्वेषण अत्वरित रीति में किया जा सके ।" इसलिए आयोग ने प्रतिप्रेषण के लिए 60 दिन की अधिकतम समय-सीमा नियत करने की सिफारिश की । आयोग ने पहले रिपोर्ट सं. 37 में अभिव्यक्त इस आरक्षण पर भी विचार किया कि ऐसे विस्तार के परिणामस्वरूप 60 दिन की अवधि एक नित्यचर्या की बात बनती जा रही है । तथापि, यह विश्वास व्यक्त किया गया कि उच्चतर न्यायालय द्वारा उचित पर्यवेक्षण से इसको रोकने में सहायता मिलेगी ।

11.4 रिपोर्ट सं. 41 में दिए गए सुझावों को ध्यान में रखा गया और केंद्रीय सरकार द्वारा वर्ष 1970 में दंड प्रक्रिया संहिता विधेयक का प्रारूपण करते हुए इसे सम्मिलित किया गया । अंततोगत्वा, 1898 की

संहिता का स्थान वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा लिया गया । दंड प्रक्रिया संहिता के उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह उपबंधित है कि सरकार ने विधि आयोग की सिफारिशों का मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखा है :–

> "3. सरकार द्वारा आयोग की सिफारिशों की परीक्षा अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित मूलभूत बातों को ध्यान में रखते हुए सावधानीपूर्वक की गई है :–
>
> (i) अभियुक्त व्यक्ति को नैसर्गिक न्याय के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार ऋजु विचारण मिलना चाहिए ;
>
> (ii) अन्वेषण और विचारण में विलंब से बचने के लिए भरसक प्रयास किया जाना चाहिए जो कि न केवल इसमें अंतर्वलित व्यक्तियों के लिए हानिकर है अपितु समाज के लिए भी हानिकर है ; और
>
> (iii) प्रक्रिया जटिल नहीं होनी चाहिए और अधिकतम संभाव्य सीमा तक समुदाय के निर्धनतम वर्गों तक ऋजु बर्ताव सुनिश्चित किया जाना चाहिए ।"

11.5 यही वह पृष्ठभूमि थी कि वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता में अभियुक्त के प्रतिप्रेषण की अवधि की समय-सीमाओं का कारित किए गए अपराध की गंभीरता के अनुपात में उपबंध करते हुए धारा 167(2) अधिनियमित की गई थी, जिसमें असफल रहने पर अभियुक्त जमानत का अजेय अधिकार अर्जित कर लेता है । जैसा कि ऊपर उल्लिखित विधि आयोग की सिफारिशों से स्पष्ट है, विधानमंडल का आशय अभियुक्त की सिविल स्वाधीनताओं की संरक्षा की आवश्यकता का अन्वेषण पर्याप्त समय-सीमाओं में पूरा करने की आवश्यकता के साथ संतुलन बनाना था । धारा 167(2) में यह स्पष्ट रूप से आदिष्ट किया गया है कि अन्वेषक अभिकरण अपेक्षित साक्ष्य विहित समयावधि के भीतर एकत्रित करे, जिसमें असफल रहने पर अभियुक्त को और आगे निरुद्ध नहीं किया जा सकता है । इससे यह सुनिश्चित होता है कि अन्वेषक अधिकारी और आगे प्रतिप्रेषण की संभाव्यता का दुरुपयोग किए

बिना तत्परता से और कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए आबद्ध हैं । इससे यह भी सुनिश्चित होता है कि न्यायालय अपराध की सूचना देने की तारीख से किसी असम्यक् विलंब के बिना मामले का संज्ञान लें, जिससे कि दांडिक न्याय व्यवस्था के प्रति बृहत समाज का विश्वास कम न हो और सनकपन उत्पन्न न हो सके ।

11.6 अत: जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, धारा 167(2) विधि विरुद्ध और मनमाने निरोध के विरुद्ध प्राण और दैहिक स्वतंत्रता की सुरक्षा का वचन देने वाले अनुच्छेद 21 के अधीन सांविधानिक वचनबद्धता से अविभाज्य रूप से संबद्ध है और इसका निर्वचन अवश्य ऐसी रीति में किया जाना चाहिए जिससे इस प्रयोजन की पूर्ति हो सके । इस संबंध में हम **राकेश कुमार पाल** बनाम **असम राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय को निर्दिष्ट करना उपयोगी समझते हैं, जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के निर्वचन के बारे में कतिपय मौलिक सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं, यद्यपि उस मामले में अंतर्वलित विधि के प्रश्न प्रस्तुत मामले से थोड़े भिन्न थे । **राकेश कुमार पाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष प्रश्न यह थे कि प्रथमत:, क्या धारा 167(2)(क)(i) के अधीन 90 दिन के प्रतिप्रेषण का विस्तार उन अपराधों की बाबत लागू होगा जहां कारावास की अधिकतम अवधि 10 वर्ष है, यद्यपि न्यूनतम अवधि 10 वर्ष से कम है । द्वितीयत:, क्या अभियुक्त द्वारा फाइल किए गए जमानत के लिए आवेदन का अर्थान्वयन व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन के रूप में किया जा सकता है, भले ही धारा 167(2) के अधीन कानूनी अवधि के समाप्त हो जाने का जमानत के आधार के रूप में विनिर्दिष्ट रूप से अभिवाक् न किया गया हो । बहुमत की राय से यह अभिनिर्धारित किया गया कि 90 दिन की सीमा केवल उन अपराधों की बाबत उपलब्ध है जहां न्यूनतम 10 वर्ष के कारावास की अवधि अनुबंधित है और उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त की ओर से काउंसेल द्वारा व्यतिक्रम जमानत के लिए दी गई

---

[1] (2017) 15 एस. सी. सी. 67.

मौखिक दलीलें लिखित आवेदन की एवज में पर्याप्त होंगी । यह बात इस तर्कणा पर आधारित है कि न्यायालय को दैहिक स्वतंत्रता के मामलों में अति तकनीकी वादी नहीं होना चाहिए । न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर ने अपनी बहुमत की राय में प्रासंगिक रूप से निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "29. इस बात के होते हुए भी, 24 घंटे के भीतर और अन्यथा समयाबद्ध अवधि के भीतर ही अन्वेषणों को पूर्ण करने का मूलभूत विधायी आशय अपरिवर्तित है भले ही उक्त अवधि का विस्तार वर्षों तक के लिए किया गया है । यह इस बात का सूचक है कि अन्वेषणों को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त समय देने के अतिरिक्त विधानमंडल ने सदैव दैहिक स्वतंत्रता को महत्व दिया है और सदैव यह महसूस किया है कि अभियुक्त को लंबे समय तक या अनिश्चित अवधि तक के लिए अभिरक्षा में रखना अनुचित होगा । इसी कारणवश और अन्वेषक अभिकरण को उत्तरदायी ठहराने के लिए भी विधानमंडल द्वारा समय-सीमाएं अधिकथित की गई हैं .....।
>
> *** *** ***
>
> 32. ..... लंबी अवधि से व्यक्त किए जा रहे ऐसे विचारों और राय ने एक दशक से अधिक विधानमंडल को अन्वेषणों का तत्परता से समापन सुनिश्चित करने के लिए प्रेरित किया जिससे कि अभियुक्त व्यक्ति को लंबे समय तक अभिरक्षा में रखकर उस पुरुष या स्त्री को उस अपराध के लिए दैहिक स्वतंत्रता से अनावश्यक रूप से वंचित न किया जा सके जो शायद उसने कारित न किया हो । हमारी राय में, हमारे समक्ष संपूर्ण बहस को अन्वेषणों का तत्परता से समापन करने के दृष्टिकोण से और दैहिक स्वतंत्रता के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए न कि विशुद्ध रूप से शब्दकोशीय या शाब्दिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए, जैसी कि राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दलील दी गई है ।
>
> *** *** ***

41. हमने यह दृष्टिकोण इस बात को ध्यान में रखते हुए अपनाया है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन दैहिक स्वतंत्रता के मामलों में सदैव औपचारिकतावादी या तकनीकीवादी होना उचित नहीं है । इस न्यायालय और अन्य सांविधानिक न्यायालयों का दैहिक स्वतंत्रता संबंधी विधिशास्त्र का इतिहास, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण और अन्य रिट भी सम्मिलित हैं, मुख्य न्यायाधीश या न्यायालय को संबोधित एक पत्र के आधार पर भी ग्रहण करने का रहा है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

अत: न्यायालय ऐसे किसी मुद्दे पर विचार करते समय जो अनुच्छेद 21 में अंतर्विष्ट अधिकारों के संबंध में हो, एक कठोर या औपचारिकतावादी दृष्टिकोण नहीं अपना सकते हैं ।

11.7 हम **एस. कासी** बनाम **राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक, सामयनाल्लुर पुलिस थाना मदुरै, जिला**[1] (2020 की दांडिक अपील सं. 452, तारीख 19 जून, 2020) वाले मामले में इस न्यायालय के हाल ही के निर्णय को निर्दिष्ट करना भी उपयोगी होगा, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि धारा 167(2) के अधीन व्यतिक्रम जमानत का अजेय अधिकार अनुच्छेद 21 के अधीन दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार का एक अभिन्न अंग है और जमानत का उक्त अधिकार महामारी की स्थिति जैसी कि वर्तमान में चल रही है, में भी निलंबित नहीं किया जा सकता है । इस बात पर बल दिया गया कि अभियुक्त को स्वतंत्र किए जाने का अधिकार अन्वेषण जारी रखने और आरोप पत्र प्रस्तुत करने के राज्य के अधिकार के ऊपर है ।

11.8 इसके अतिरिक्त, यह सुस्थिर है कि किसी शास्तिक कानून के अर्थान्वयन में किसी अस्पष्टता की दशा में न्यायालयों को अभियुक्त व्यक्ति और राज्य मशीनरी के बीच सर्वव्यापी शक्ति विषमता की बात पर विचार करते हुए उस निर्वचन का समर्थन करना चाहिए जो अभियुक्त के अधिकारों की संरक्षा के समर्थन में हो । यह निर्वचन न

---

[1] 2020 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 529.

केवल मूल शास्तिक कानूनों के मामले में लागू होता है अपितु अभियुक्त की स्वतंत्रता को कम करने का उपबंध करने वाली प्रक्रिया के मामले में भी लागू होता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता की बाबत विशिष्ट रूप से उद्देश्यों और कारणों का कथन (उपर्युक्त) अर्थान्वयन के लिए एक महत्वपूर्ण सहायक है । धारा 167(2) का निर्वचन विधानमंडल द्वारा अभिव्यक्त तीन उद्देश्यों अर्थात् ऋजु विचारण, त्वरित अन्वेषण और विचारण सुनिश्चित करने और ऐसी तर्कसंगत प्रक्रिया उपस्थापित करने जो समाज के निर्धन वर्गों के हितों की संरक्षा करती हो, को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । ये उद्देश्य कुछ और नहीं अपितु अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत मूल अधिकार की रचना है ।

11.9 अत: अनुच्छेद 21 के अधीन प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार को कायम रखने के परिप्रेक्ष्य से हम प्रस्तुत मामले में उद्भूत समस्या का समाधान करने के प्रयोजनार्थ धारा 167(2) के विभिन्न न्यायिक निर्वचनों को स्पष्ट करेंगे और सामंजस्य स्थापित करेंगे ।

III संजय दत्त वाले मामले में "यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है" का अर्थ

12. धारा 167(2) के अधीन अधिकार के प्रोद्भूत और निर्वापित होने के प्रश्न से संबंधित सुसंगत विनिश्चयों में से एक **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय है । उस मामले में, न्यायालय का आह्वान आतंकवादी और विध्वंसकारी कार्यकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (टाडा) की धारा 20(4)(कख) का अर्थान्वयन करने के लिए किया गया था जो कि स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36क(4) के परंतुक के समान है । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 167(2) के साथ पठित टाडा की धारा 20(4) के अधीन जमानत की ईप्सा करने वाले अभियुक्त व्यक्ति को ऐसी व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन करना चाहिए और न्यायालय लोक अभियोजक को सूचना देने के पश्चात्,

मामले के गुणागुण से प्रभावित हुए बिना, अभियुक्त को जमानत पर छोड़ देगा यदि आरोप पत्र फाइल करने की अवधि समाप्त हो गई है । यह कि जब तक न्यायालय लोक अभियोजक की रिपोर्ट के आधार पर समय का विस्तार मंजूर नहीं करता है, तो टाडा के अधीन अभिहित न्यायालय को अभियुक्त को व्यतिक्रम जमानत के उसके अजेय अधिकार से इनकार करने की कोई अधिकारिता नहीं होगी यदि अभियुक्त जमानत की ईप्सा करता है और न्यायालय द्वारा यथा-निदेशित जमानत बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए तैयार है । इसके अतिरिक्त ऐसे परिदृश्य में, न्यायालय और आगे प्रतिप्रेषण के लिए किसी अनुरोध से इनकार करने के लिए आबद्ध है । तथापि, यह भी अभिव्यक्त रूप से उल्लेख किया जाता है कि यदि अभियुक्त ऐसा कोई आवेदन फाइल नहीं करता है तो न्यायालय अपनी स्वप्रेरणा पर अभियुक्त को नहीं छोड़ सकता है ।

12.1 बाद में धारा 20(4)(कख) के उचित अर्थान्वयन का प्रश्न **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ को निर्देशित किया गया था । इस न्यायालय के समक्ष यह बात आरक्षित रखी गई थी कि **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय को अंतिम रिपोर्ट या चालान फाइल किए जाने के पश्चात् भी व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने के अभियुक्त के अजेय अधिकार को प्रदत्त करने के रूप में अभिनिर्धारित नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रश्न को स्थिर करने के लिए, संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि :–

> "48 <u>ऐसी स्थिति में अभियुक्त को प्रोद्भूत अजेय अधिकार चालान फाइल किए जाने से पूर्व ही प्रवर्तनीय है और यदि इससे लाभ नहीं उठाया गया है तो यह चालान फाइल किए जाने पर बना नहीं रहता है अथवा लागू नहीं रहता है ।</u> एक बार चालान फाइल किए जाने पर जमानत मंजूर किए जाने के प्रश्न पर चालान फाइल किए जाने के पश्चात् किसी अभियुक्त को जमानत मंजूर किए जाने से संबंधित उपबंधों के अधीन मामले के तथ्यों के प्रतिनिर्देश करते हुए विनिश्चय किया जाना चाहिए । चालान फाइल किए जाने के उपरांत अभियुक्त की अभिरक्षा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167

द्वारा शासित न होकर विभिन्न उपबंधों द्वारा शासित होती है । यदि अभियुक्त को वह अधिकार प्रोद्भूत हुआ था किंतु इसे चालान फाइल किए जाने तक लागू नहीं किया गया, तब इसे इसके पश्चात् लागू किए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि यह चालान फाइल किए जाते ही निर्वापित हो जाता है क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 लागू नहीं रहती है । संविधान न्यायपीठ के विनिश्चयों से यह स्थिर है कि प्रतिप्रेषण के विधिमान्य आदेश के अभाव में या अभियुक्त के निरोध के आधार पर बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट से संबंधित याचिका खारिज कर दी जाएगी । यदि नियम के घोषित किए जाने की तारीख को अभिरक्षा या निरोध किसी विधिमान्य आदेश पर आधारित है ।

53. ... (2)(ख) जैसा कि हितेन्द्र विष्णु ठाकुर **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(1994) 4 एस. सी. सी. 602 = 1994 एस. सी. सी. (क्रिमिनल) 1087 = जे. टी. (1994) 4 एस. सी. 255] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, अन्वेषण पूरा करने और अनुज्ञेय समय के भीतर चालान फाइल करने के व्यतिक्रम में टाडा अधिनियम की धारा 20(4)(खख) के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अनुसार अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने का 'अजेय अधिकार' ऐसा अधिकार है जो लागू होता है और व्यतिक्रम के समय से चालान फाइल किए जाने तक अभियुक्त द्वारा प्रवर्तनीय होता है और यह चालान फाइल किए जाने पर बना नहीं रहता है और न ही प्रवर्तित बना रहता है । यदि अभियुक्त, यथास्थिति, 180 दिन की अवधि या विस्तारित अवधि की समाप्ति पर इस उपबंध के अधीन जमानत के लिए आवेदन करता है, तो उसे तत्काल जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । इस प्रकार जमानत पर छोड़े गए अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार गिरफ्तार करके अभिरक्षा के सुपुर्द किया जा सकता है । अनुज्ञेय समय के भीतर चालान फाइल करने में व्यतिक्रम के होते हुए भी अभियुक्त का चालान फाइल किए जाने के पश्चात् जमानत पर छोड़े जाने का अधिकार चालान फाइल किए जाने के समय से ही इस प्रक्रम पर

लागू होने वाले जमानत मंजूर किए जाने से संबंधित उपबंधों द्वारा शासित होता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

यह प्रतीत होता है कि ऊपर उल्लिखित "यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है" पद विवाद का विषय बन गया है क्योंकि इस बारे में न्यायालयों की राय भिन्न-भिन्न है कि क्या व्यतिक्रम जमानत के अधिकार का उसी समय लाभ उठा लिया जाता है या प्रवर्तित हो जाता है जैसे ही जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जाता है ; या जब जमानत याचिका का न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से निपटारा किया जाता है ; या केवल तब जब अभियुक्त वास्तव में न्यायालय द्वारा यथानिदेशित जमानत प्रस्तुत करता है और अभिरक्षा से छोड़ा जाता है ।

12.2 **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत की राय ने इस अस्पष्टता को यह अभिनिर्धारित करते हुए स्पष्ट किया था कि **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में प्रयुक्त "यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है" अभिव्यक्ति का अवश्य ही यह अर्थ समझा जाना चाहिए कि "जब अभियुक्त आवेदन फाइल करता है और निदेश देने पर जमानत देने के लिए तैयार है" । उस मामले में, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए था कि अभियुक्त ने अपने अजेय अधिकार को प्रवर्तित कर लिया था भले ही न्यायालय ने उक्त आवेदन पर विचार नहीं किया था और जमानत के निबंधनों और शर्तों को उपदर्शित नहीं किया था और अभियुक्त को अभी जमानत प्रस्तुत करनी है ।

12.3 तथापि, न्यायमूर्ति बी. एन. अग्रवाल ने अपनी अल्पमत की राय में आंशिक रूप से बहुमत की राय से, विशिष्ट रूप से **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 13.6 में अभिव्यक्त निष्कर्षों की बाबत असहमति व्यक्त की थी । उन्होंने यह राय व्यक्त की कि धारा 167(2)(क)(ii) में "अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाएगा यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत दे देता है" (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है) और धारा 167(2) के स्पष्टीकरण-1 में "अभियुक्त को तब तक अभिरक्षा में निरुद्ध रखा

जाएगा जब तक वह जमानत नहीं देता है" वाक्यांश से यह उपदर्शित होता है कि व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने के अधिकार का प्रयोग केवल वास्तव में जमानत देने पर किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय का यह निर्वचन किया जाना चाहिए कि उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि जमानत पर छोड़े जाने का निदेश देते हुए कोई आदेश पारित किए जाने से पूर्व और जमानत बंधपत्र प्रस्तुत किए जाने से पूर्व चालान फाइल कर दिया जाता है, तो धारा 167(2) के अधीन अधिकार अभियुक्त को उपलब्ध होना समाप्त हो जाएगा ।

12.4 दोनों राय पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत की राय **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय का सही निर्वचन है । **संजय दत्त** वाले मामले में का विनिश्चय अभियुक्त पर केवल यह एक सकारात्मक समवर्ती बाध्यता अधिरोपित करता है कि जैसे ही अन्वेषण की विहित अवधि समाप्त हो जाती है, व्यतिक्रम जमानत के लिए तत्परता से आवेदन करे । जैसा कि **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय में अभिव्यक्त रूप से चेतावनी दी गई है, न्यायालय स्व-प्रेरणा से इस बात पर विचार किए बिना जमानत प्रदान नहीं कर सकता है कि क्या अभियुक्त जमानत देने के लिए तैयार है या नहीं । यह बात धारा 167(2) में यह सुनिश्चित करने के लिए एक अंतर्निहित रक्षोपाय है कि अभियुक्त को न्यायालय का यह समाधान किए बिना स्वयंमेव अभिरक्षा से नहीं छोड़ा जाता है कि वह, यथास्थिति, और आगे अन्वेषण के लिए या विचारण के लिए अपनी उपस्थिति की गारंटी देने में समर्थ है । इसके अतिरिक्त, जैसा कि **राकेश कुमार पाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत की राय में उल्लेख किया गया है, ऐसे विरले ही अवसर हो सकते हैं जहां अभियुक्त प्रतिप्रेषण के बाहर अपनी दैहिक सुरक्षा के भय के कारण या किन्हीं अन्य कारणों से जमानत के अपने अधिकार को स्वेच्छया व्यपहृत करेगा । **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले में के विनिश्चय

में यह स्पष्ट किया गया है कि जब एक बार आरोप पत्र फाइल कर दिया जाता है, तो अभियुक्त द्वारा अधिकार का ऐसा त्याग अंतिम हो जाता है और धारा 167(2) लागू होना बंद हो जाती है ।

तथापि, **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय का ऐसा निर्वचन नहीं किया जा सकता है जिससे यह अर्थ लगाया जा सके कि यहां तक कि जहां अभियुक्त ने धारा 167(2) के अधीन अपने अधिकार का तत्परता से प्रयोग किया हो और जमानत देने के लिए इच्छा उपदर्शित की हो, वहां भी उसके आवेदन का विनिश्चय करने में हुए विलंब या आवेदन को गलत रूप से नामंजूर कर देने के कारण जमानत से इनकार किया जा सकता है । न ही उसे अभियोजन पक्ष की उसी दिन जिस दिन जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जाता है कोई पुलिस रिपोर्ट या अतिरिक्त शिकायत फाइल करने की चालबाजी के कारण अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जा सकता है ।

12.5 राज्य की इस दलील से, कि "लाभ उठाया गया है" अभिव्यक्ति का एकमात्र अर्थ आवश्यक जमानत देने के पश्चात् वास्तव में छोड़ देना है, अभियुक्त के साथ घोर अन्याय कारित होगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परंतुक का प्रयोजन की विफल हो जाएगा । यदि श्री लेखी की दलीलों को स्वीकार किया जाता है तो ऐसे बहुत से दृष्टांत होंगे जहां लोक अभियोजक जमानत के लिए आवेदन की सुनवाई को लंबा खींच सकेगा जिससे कि मध्यवर्ती काल के दौरान न्यायालय के समक्ष कोई अतिरिक्त शिकायत या अन्वेषण रिपोर्ट फाइल करके राज्य के लिए सुकर बनाया जा सके । कुछ मामलों में, न्यायालय भी एक या अन्य कारण से प्रक्रिया में विलंब कर सकेगा । ऐसी स्थिति में, अपने पक्ष में जमानत का आदेश प्राप्त करने का अभियुक्त का अजेय अधिकार विफल हो जाएगा । यह विधानमंडल का आशय नहीं हो सकता था । यदि ऐसी परिपाटी को अनुज्ञात किया जाता है तो यह अवैध अभिरक्षा को वैध मानने की कोटि में आएगा । अनुबंधित अवधि की समाप्ति के पश्चात्, अभियुक्त को अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने की न्यायालय को और आगे अधिकारिता नहीं है । अभियोजन पक्ष को अनुबंधित अवधि के भीतर अपीलार्थी के विरुद्ध अन्वेषण रिपोर्ट/शिकायत

फाइल न करने के स्वयं अपने व्यतिक्रम का फायदा लेने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा ।

12.6 **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति बी. एन. अग्रवाल द्वारा अपनी अल्पमत की राय में यह उल्लेख किया गया था कि ऐसे मामलों के बीच विभेद किया जा सकता है जहां न्यायालय ने अभियुक्त के अधिकार को विफल करने के लिए विलंबकारी दाव पेंच अपनाया हो और जहां जमानत के लिए आवेदन का विनिश्चय करने में हुआ विलंब सद्भावी और आशय के बिना हुआ हो । पूर्वत्तर दशा में, अभियुक्त समुचित निदेश के लिए वरिष्ठ न्यायालय में समावेदन कर सकता है । जबकि पश्चात्वर्ती दशा में, यदि अभियोजन पक्ष इसी बीच चालान फाइल कर देता है तो न्यायालय को अवश्य जमानत के लिए आवेदन को खारिज कर देना चाहिए । इसी रीति में, प्रत्यर्थी/शिकायतकर्ता ने प्रस्तुत मामले में भी **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चय और धारा 167(2) से संबंधित इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चयों को इस आधार पर प्रभेदित करने की ईप्सा की कि विचारण न्यायालय ने जमानत के आवेदन पर उसी दिन विचार किया था जिस दिन यह फाइल किया गया था और इसलिए ऐसा कोई अनुचित विलंब नहीं हुआ था जिससे अभियुक्त जमानत पर छोड़े जोने का हकदार बन जाता हो ।

हमारी सुविचारित राय में, ऐसा विभेद नहीं अपनाया जा सकता है क्योंकि इससे सामांतर मुकदमेबाजी उद्भूत होगी जिनमें किसी जमानत के लिए आवेदन में न्यायालय की प्रेरणा के कारण विलंब करने या किसी विशिष्ट तारीख को किसी विशिष्ट समय पर सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करने के लिए अलग से जांच करने की आवश्यकता होगी । जमानत के लिए आवेदन का विनिश्चय करने में विलंब अनेक बातों के कारण हो सकता है और सभी परिस्थितियों में इसका साफ-साफ उत्तर नहीं दिया जा सकता है । इसलिए, जमानत के लिए आवेदन का विनिश्चय करने में हुए विलंब के लिए कारणों को विचार में लाए बिना, जमानत के लिए आवेदन फाइल करने के उपरांत यह समझा जाएगा कि अभियुक्त ने अपने अजेय अधिकार का प्रयोग कर लिया था भले ही अभिरक्षा से

वास्तव में छोड़ा जाना जमानत प्रदान करने के आदेश के अनिवार्यत: अनुपालन के अध्यधीन हो ।

12.7 हम **राकेश कुमार पाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त किए गए इस मत से सहमत हैं कि सचेत करने के उपाय के रूप में, अभियुक्त की ओर से काउंसेल तथा मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को धारा 167(2) के अधीन अजेय अधिकार की उपलब्धता के बारे में, जब एक बार यह अधिकार उसे प्रोद्भूत हो जाता है, किसी विलंब के बिना सूचित करना चाहिए । विशेष रूप से वहां जहां अभियुक्त समाज के शोषित वर्ग से हो और उसके विधिक अधिकारों के बारे में जानकारी तक पहुंच की संभावना न हो । मजिस्ट्रेटों द्वारा ऐसी जानकारी सांझा करने से अभियोजन पक्ष द्वारा अपनाए जाने वाले कोई विलंबकारी दाव पेंच विफल हो जाएंगे और यह भी सुनिश्चित होगा कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन बताई गई आबद्धताएं तथा दंड प्रक्रिया संहिता के उद्देश्यों और कारणों के कथन कायम रहें ।

IV दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण-I का महत्व

13. यह सही है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के स्पष्टीकरण-I में यह उपबंधित है कि अभियुक्त को तब तक अभिरक्षा में निरुद्ध रखा जाएगा जब तक वह जमानत नहीं दे देता है । तथापि, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त रूप से यह स्पष्ट किया गया था कि धारा 167(2) का स्पष्टीकरण-I केवल उन परिस्थितियों में लागू होता है जहां अभियुक्त ने व्यतिक्रम जमानत के अपने अधिकार का लाभ उठा लिया हो और न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशानुसार जमानत देने का वचन दिया हो, किंतु बाद में न्यायालय द्वारा विहित समय के भीतर जमानत के आदेश के निबंधनों और शर्तों का पालन करने में असफल रहा हो । हम बहुमत के मत से सहमत हैं । ऐसे परिदृश्य में, यदि अभियोजन पक्ष बाद में कोई आरोप पत्र फाइल कर देता है, तो यह कहा जा सकता है कि अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन अपने जमानत के अधिकार को खो दिया था । स्पष्टीकरण-I यह

सुनिश्चित करने के लिए केवल एक रक्षोपाय है कि जमानत के आदेश का पालन किए बिना अभियुक्त को तुरंत अभिरक्षा से न छोड़ा जाए ।

13.1 तथापि, धारा 167(2) और इसके स्पष्टीकरण-I में दी गई अभिव्यक्ति 'अभियुक्त जमानत नहीं देता है' का निर्वचन यह अर्थ लगाने के लिए नहीं किया जा सकता है कि यदि अभियुक्त तैयार और इच्छुक होने के बावजूद, मजिस्ट्रेट के समक्ष जमानत के लिए आवेदन लंबित रहने के कारण, या क्योंकि उसके जमानत के आवेदन को नामंजूर कर देने पर किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष उसे दी गई चुनौती लंबित थी, जमानत नहीं दे सका था तो उसे अभिरक्षा में निरुद्ध रखे रखना प्राधिकृत है । यदि ऐसा निर्वचन स्वीकार किया जाता है तो धारा 167(2) के परंतुक का उपयोजन संकुचित होकर केवल उन मामलों तक सीमित हो जाएगा जहां मजिस्ट्रेट जमानत के आवेदन का, जैसे ही यह आवेदन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तत्काल विनिश्चय करने में समर्थ हो जाता है, जो कि कभी-कभी न्यायालयों के समक्ष लंबित पड़े मामलों और अन्य कारणों को ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक दृष्टि से संभव न हो । इसके अलावा, जमानत के लिए आवेदन का विनिश्चय लोक अभियोजक को सूचना देने के पश्चात् ही किया जाना चाहिए । परंतुक का ऐसा कठोर निर्वचन अभियुक्त के अधिकारों को विफल कर देगा । इसलिए जमानत पर छोड़े जाने के उसके अधिकार को, केवल इस कारण विफल नहीं किया जा सकता है कि जमानत देने और जमानत बंधपत्र आदि देने की जमानत की शर्तों को पूरा करने से पूर्व अभियोजन पक्ष ने आरोप पत्र फाइल कर दिया था ।

13.2 अत: हम श्री लेखी की इस दलील को नामंजूर करते हैं कि अपीलार्थी-अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के संरक्षण का हकदार नहीं है यदि उसने उस समय पर जमानत न दी हो जब अतिरिक्त शिकायत फाइल की गई थी ।

V. स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36(क)(4) के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन अभियोजक का अधिकार

14. **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त इस राय के कारण भी कुछ संविवाद होना प्रतीत होता है कि लोक अभियोजक अन्वेषण के लिए समय का विस्तार करने की ईप्सा करते हुए एक रिपोर्ट फाइल करके व्यतिक्रम जमानत प्रदान करने का विरोध कर सकता है । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि :–

> "30. ..... तथापि, लोक अभियोजक के लिए यह अनुज्ञेय है कि वह जमानत की मंजूरी का प्रतिरोध करने के प्रयोजन से न्यायालय के समक्ष खंड (खख) के अधीन समय बढ़ाए जाने के संबंध में अपनी रिपोर्ट फाइल करके जमानत की मंजूरी का प्रतिरोध कर सके । तथापि, न्यायालय अभियुक्त को खंड (खख) के अधीन समय बढ़ाए जाने के संबंध में अपनी बात कहने का नोटिस दिए बिना समय को किसी प्रकार से नहीं बढ़ाएगा । मामले के इस पहलू की दृष्टि से, इस बात का कि 'व्यतिक्रम' के आधार पर धारा 20(4) के अधीन जमानत का आवेदन पहले किया गया है या कि खंड (खख) द्वारा यथा परिकल्पित रिपोर्ट लोक अभियोजक द्वारा पहले फाइल की गई है तब तक कोई महत्व नहीं है जब तक जमानत स्वीकार या अस्वीकार करते समय दोनों पर विचार किया जाता है । यदि धारा 20(4) के खंड (ख) द्वारा विहित कालावधि व्यतीत हो गई हो तथा न्यायालय ने खंड (खख) के अधीन लोक अभियोजक की रिपोर्ट के आधार पर समय न बढ़ाया हो, तो न्यायालय अभियुक्त को जमानत पर छोड़ देगा क्योंकि जमानत पर इस प्रकार छूटना अभियुक्त का अजेय अधिकार है । उस दशा में भी, जिसमें न्यायालय ने खंड (खख) के अधीन समय बढ़ा दिया हो किन्तु बढ़ाए गए समय के भीतर आरोप पत्र फाइल न किया गया हो, न्यायालय के पास अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होगा बशर्ते कि अभियुक्त ने जमानत पर छोड़े जाने की ईप्सा की हो और वह न्यायालय के निदेश के अनुसार जमानत बंधपत्र देने के लिए तैयार हो .... ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

संजय दत्त (उपर्युक्त) वाले मामले में इसकी अभिपुष्टि की गई थी,

जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि व्यतिक्रम जमानत प्रदान करना समय के विस्तार के लिए की गई प्रार्थना, यदि ऐसी कोई प्रार्थना की जाती है, को स्वीकार करने से इनकार करने के अध्यधीन है । यह प्रतीत होता है कि इससे यह भ्रामक धारणा उत्पन्न हुई कि **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस मत का अनुमोदन किया गया था कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त को जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व किसी भी समय पर इस तथ्य के होते हुए भी कि व्यतिक्रम के आधार पर जमानत के लिए आवेदन पहले ही फाइल कर दिया गया था, अन्वेषण पूरा करने या अंतिम रिपोर्ट फाइल करने के लिए समय का विस्तार करने (जैसा कि सुसंगत विशेष कानून में उपबंधित है) की ईप्सा कर सकता है ।

14.1 **हितेन्द्र विष्णु ठाकुर** (उपर्युक्त) और **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामलों में की गई इस आशय की मताभिव्यक्तियां कि व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन पर और लोक अभियोजन द्वारा समय के विस्तार के लिए किए गए किसी आवेदन पर अवश्य एक साथ विचार किया जाना चाहिए, हमारी राय में, केवल उन स्थितियों में लागू होती हैं जहां लोक अभियोजक समय का विस्तार करने की ईप्सा करते हुए कोई रिपोर्ट अभियुक्त द्वारा व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन फाइल करने से पूर्व फाइल करता है । ऐसी स्थिति में, इस तथ्य के होते हुए भी कि अन्वेषण पूरा करने की अवधि समाप्त हो गई है, दोनों आवेदनों पर एक साथ विचार किया जाना होगा । तथापि, जहां अभियुक्त ने पहले ही व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन कर दिया था, वहां लोक अभियोजक बाद में कोई अंतिम रिपोर्ट, अतिरिक्त शिकायत या समय का विस्तार करने की ईप्सा करने के लिए रिपोर्ट फाइल करके उसके अजेय अधिकार के प्रवर्तन को विफल नहीं कर सकता है ।

14.2 यह भी कहना होगा और यह सुस्थिर है कि धारा 167(2) के परंतुक के अधीन फाइल किए गए व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन पर राज्य को सूचना इसलिए जारी की जाती है जिससे कि लोक अभियोजक न्यायालय का यह समाधान कर सके कि अभियोजन पक्ष ने पहले ही न्यायालय से समय के विस्तार का आदेश अभिप्राप्त कर लिया था ; या यह कि विहित अवधि की समाप्ति से पूर्व ही अभिहित

न्यायालय में चालान फाइल कर दिया गया था ; या यह कि विहित अवधि वास्तव में समाप्त नहीं हुई थी । तद्नुसार, अभियोजन पक्ष व्यतिक्रम के अभिकथित आधार पर जमानत प्रदान करने से इनकार करने का आग्रह कर सकता है । ऐसी सूचना जारी करने से अभियुक्त द्वारा जानबूझकर या अनवधानता से कतिपय तथ्यों को छिपाकर व्यतिक्रम जमानत अभिप्राप्त करने की संभाव्यता से बचा जा सकेगा और कार्यवाहियों की बारम्बारता के विरुद्ध नियंत्रण भी होगा । तथापि, लोक अभियोजकों को धारा 167(2) के अधीन फाइल किए गए जमानत के आवेदनों पर न्यायालय द्वारा उन्हें जारी की गई सीमित सूचना का कार्यवाहियों को लंबा खींचकर और 'अतिरिक्त समय लेने' और अन्वेषक अभिकरण द्वारा अन्वेषण में खामी को भरने के लिए सुकर बनाने के प्रयोजन से बाद में आवेदन/रिपोर्ट फाइल करके दुरुपयोग करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है ।

VI. धारा 167(2) के अधीन अधिकार से संबंधित अन्य सुसंगत पूर्व-निर्णय

15. हमारे पूर्वोल्लिखित निष्कर्षों की पुष्टि **मोहम्मद इकबाल मदर शेख** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय से होती है । उस मामले में, यद्यपि आरोप पत्र टाडा अधिनियम की धारा 20(4)(खख) के अधीन कानूनी अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रस्तुत किया गया था, तो भी यह स्वीकार किया गया था कि अपीलार्थियों द्वारा जमानत के लिए पहले कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था । इसलिए, न्यायालय ने **संजय दत्त** वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि जब एक बार आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया गया था और संज्ञान ले लिया गया था, जमानत के अधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता था । तथापि, साथ-ही-साथ, तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने व्याकुलता के साथ यह भी अभिव्यक्त किया कि न्यायालय जमानत के आवेदनों को आरोप पत्र फाइल प्रस्तुत किए जाने के समय तक लंबित रखने जैसा व्यवहार नहीं कर सकते हैं, जिससे कि जो कानूनी अधिकार अभियुक्त को प्रोद्भूत होता है उसे विफल किया जा सके । यदि न्यायालय जानबूझकर जमानत के

आवेदन का विनिश्चय नहीं करता है अपितु, अभियोजन पक्ष को समय प्रदान करते हुए मामले को स्थगित कर देता है, तो यह विधायी अधिदेश के अतिक्रमण में होगा । यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि **मोहम्मद इकबाल मदर शेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ का भी भाग थी ।

15.1 इसी प्रकार, **डा. बिपिन शांतिलाल पांचाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह स्वीकार किया गया था कि अभियुक्त ने जमानत के लिए आवेदन उस समय फाइल नहीं किया था जब उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन अधिकार प्रोद्भूत हुआ था । आरोप पत्र उस समय से पहले ही फाइल किया जा चुका था जब अभियुक्त ने अपने अधिकार का लाभ उठाने की ईप्सा की थी । संयोगवश, उसी तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने जिसने **मोहम्मद इकबाल मदर शेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में राय दी थी और जो **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में मूल संविधान पीठ का भाग थी, निम्नलिखित निर्णय दिया :–

> "4. ..... किंतु यह एक स्वीकृत स्थिति है कि आरोप पत्र तारीख 23 मई, 1994 को फाइल किया गया था और अब अपीलार्थी संहिता के अन्य उपबंधों के अधीन पारित प्रतिप्रेषण के आदेशों के आधार पर अभिरक्षा में है । <u>क्या अभियुक्त जो संहिता की धारा 167 की उपधारा (2) के परंतुक के अधीन जमानत पर छोड़े जाने का हकदार था, जब ऐसा अधिकार प्रोद्भूत हुआ था तब आवेदन नहीं करने पर क्या कार्यवाहियों के किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर उस अधिकार का प्रयोग कर सकता है, इसका अवलोकन संजय दत्त **बनाम** राज्य, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा किया था ....।</u>
>
> ..... अत: यदि अभियुक्त व्यक्ति अभियोजन पक्ष की विधि द्वारा अनुज्ञात अधिकतम समय के भीतर आरोप पत्र फाइल करने में असफलता के कारण जमानत पर छोड़े जाने के अपने अधिकार का प्रयोग करने में असफल रहता है, तो वह यह अभिवाक् नहीं कर

सकता है कि उसे इस अजेय अधिकार का किसी समय पर भी इस तथ्य के होते हुए भी प्रयोग करने का अधिकार था कि उसी बीच आरोप पत्र फाइल कर दिया गया था । किंतु दूसरी ओर, यदि वह विधि द्वारा अनुज्ञात समय के भीतर इस अधिकार का प्रयोग करता है तो ऐसी परिस्थितियों में जमानत पर छोड़ दिया जाता है तो उसे मात्र आरोप पत्र फाइल किए जाने के आधार पर पुन: गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है, जैसा कि असलम बाबालाल देसाई **बनाम** महाराष्ट्र राज्य वाले मामले में उल्लेख किया गया था ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

ऊपर वर्णित चर्चा से स्पष्ट रूप से हमारे मत की ओर **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत द्वारा अपनाए गए इस दृष्टिकोण की संपुष्टि होती है कि **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय में केवल पूर्वावधानी का यह सिद्धांत अधिकथित किया गया है कि अभियुक्त को उसी क्षण व्यतिक्रम जमानत के लिए अवश्य आवेदन करना चाहिए जिस क्षण उसे धारा 167(2) के अधीन यह अधिकार प्रोद्भूत होता है । यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है, तो वह अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप पत्र फाइल करने के पश्चात् कार्यवाहियों के किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर इस अधिकार का दावा नहीं कर सकता है । "जब ऐसा अधिकार प्रोद्भूत हुआ था, तब आवेदन नहीं करने पर क्या कार्यवाहियों के किसी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर उस अधिकार का प्रयोग कर सकता है" शब्दों से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि जब एक बार अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन कर देता है तो यह समझा जाएगा कि उसने अपने अधिकार का प्रयोग कर लिया था ।

15.2 **मोहम्मद अशरफ भट्ट** (उपर्युक्त) ; **अतीफ नासीर मुल्ला** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] और **मुस्ताक अहमद मोहम्मद इसाक** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों को

---

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 29.

[2] (2009) 7 एस. सी. सी. 480.

निर्दिष्ट करना उपयोगी है । **मोहम्मद अशरफ भट्ट** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायालय ने जमानत के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया था क्योंकि पुलिस रिपोर्ट पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी थी । **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लिया गया था । इसी प्रकार **अतीफ नासीर मुल्ला** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 ('पोटा'), जो कि स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 364(4) के परंतुक के समविषयक है, के अधीन समय का विस्तार प्रदान करने का आदेश व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन से पूर्व ही पारित किया गया था, इसलिए अभियुक्त जमानत का हकदार नहीं होगा । **मुस्ताक अहमद मोहम्मद इसाक** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायालय ने इसी प्रकार महाराष्ट्र संगठित अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1999 की धारा 21(2)(ख) के अधीन जमानत के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया था क्योंकि आरोप पत्र उसी दिन फाइल किया गया था किंतु वह विशेष न्यायालय द्वारा विस्तारित अवधि का आखिरी दिन था और इसलिए वह कानूनी समय-सीमा के भीतर था ।

15.3 दूसरी ओर, **सय्यद मोहम्मद अहमद काजमी** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र, दिल्ली सरकार)**[1] वाले मामले में अभियुक्त ने व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन तारीख 17 जुलाई, 2012 को फाइल किया था । मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट ने उक्त तारीख को आवेदन पर सुनवाई करने के बजाय सुनवाई तारीख 18 जुलाई, 2012 के लिए पुनर्निर्धारित की । तारीख 18 जुलाई, 2012 को राज्य ने विधिविरुद्ध कार्यकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 की धारा 43-घ, जो स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36(क)(4) के परंतुक के ही समविषयक है, के अधीन प्रतिप्रेषण को बढ़ाने की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया । मजिस्ट्रेट ने दोनों मामलों पर तारीख 20 जुलाई, 2012 को विचार किया और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन आवेदन पर विचार किए बिना तारीख 2 जून, 2012 से

---

[1] (2012) 12 एस. सी. सी. 1.

भूतलक्षी प्रभाव से अभिरक्षा बढ़ाने के लिए आवेदन को मंजूर किया । इसके पश्चात्, तारीख 31 जुलाई, 2012 को आरोप पत्र फाइल किया गया । विद्वान् अपर महा-सालिसिटर ने **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर यह दलील दी कि जब समय का विस्तार करने के लिए आवेदन फाइल किया गया था तो कानूनी जमानत का अधिकार निर्वापित हो गया था ।

तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने पूर्वोक्त दलील को नामंजूर कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि कानूनी जमानत का अभियुक्त का अधिकार, जिसका प्रयोग उसके द्वारा जमानत का आवेदन फाइल करने के समय पर कर लिया गया था, अन्वेषण पूर्ण करने के लिए समय का विस्तार करने हेतु बाद में फाइल किए गए आवेदन से अप्रभावित रहा था । इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने उस मामले में मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाए गए विलंबकारी दाव-पेंच की निम्नलिखित शब्दों में निंदा की थी :-

> "25. संबंधित पक्षकारों की ओर से दी गई दलीलों, विधि के सुसंगत उपबंधों और उद्धृत किए गए विनिश्चयों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात्, राज्य की ओर से विद्वान् अपर महा-सालिसिटर श्री रावल द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं । इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि तारीख 17 जुलाई, 2012 को, जब अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा 2012 की सीआर सं. 86 को मंजूर किया गया था और अपीलार्थी की अभिरक्षा को अवैध ठहराया गया था तथा अपीलार्थी की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन कानूनी जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन किया गया था जिसे सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया था । मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट ने आवेदन पर सुनवाई करने की बजाय इसे अगले दिन तक के लिए स्थगित कर दिया था जब लोक अभियोजक ने अभिरक्षा और अन्वेषण की अवधि का विस्तार करने के लिए आवेदन फाइल किया था और तारीख 20 जुलाई, 2012 को अन्वेषण के समय में और अपीलार्थी की अभिरक्षा को 90 दिनों की और आगे अवधि के लिए तारीख 2

जून, 2012 से भूतलक्षी प्रभाव से विस्तार किया था । न केवल मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के भूतलक्षी प्रभाव का आदेश अमान्य है, अपितु इससे उस कानूनी अधिकार को भी विफल नहीं किया जा सकता था जो अपीलार्थी को उस तारीख से 90 दिनों के पर्यवसान पर प्रोद्भूत हुआ था जब अपीलार्थी को अभिरक्षा में लिया गया था । ऐसा अधिकार, जैसा कि संजय दत्त [(1994) 5 एस. सी. सी. 410 = 1994 एस. सी. सी. (क्रि.) 1435] वाले मामले में और विद्वान् अपर महा-सालिसिटर द्वारा उद्धृत किए गए अन्य मामलों में इस न्यायालय द्वारा टिप्पणी की गई है, केवल तब निर्वापित हो सकता है जब एक बार मामले में आरोप पत्र फाइल कर दिया गया हो और कानून जमानत मंजूर करने के लिए इससे पूर्व आवेदन नहीं किया गया हो । यह भली-भांति स्थिर है कि यदि अभियुक्त आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व कानूनी जमानत मंजूर करने के लिए अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करता है, तो वह तब अपने इस फायदे को खो देता है जब एक बार ऐसा आरोप पत्र फाइल कर दिया जाता है और इसके पश्चात् केवल नियमित जमानत के लिए आवेदन कर सकता है ।

26. तथापि, इस मामले में परिस्थितियां भिन्न हैं क्योंकि अपीलार्थी ने कानूनी जमानत के अपने अधिकार का प्रयोग उसी दिन ही किया था जिस दिन उसकी अभिरक्षा को अवैध ठहराया गया था और मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा इस आवेदन को अभियोजन पक्ष द्वारा अन्वेषण पूरा करने के लिए समय का विस्तार करने हेतु फाइल किए गए आवेदन पर कार्यवाही करने तक अविनिश्चित छोड़ दिया गया था और तदुपरांत आदेश पारित किए गए थे ।

27. हम मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का समर्थन करने में असमर्थ हैं, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है और हमारा यह मत है कि अपीलार्थी ने कानूनी जमानत मंजूर करने का अधिकार तारीख 17 जुलाई, 2012 को अर्जित कर लिया था जब अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा उसकी

अभिरक्षा को अवैध ठहराया गया था चूंकि कानूनी जमानत के लिए उसका आवेदन उस समय लंबित था जब अभियोजन पक्ष द्वारा अन्वेषण जारी रखने के लिए समय का विस्तार करने हेतु आवेदन फाइल किया गया था । हमारे मत में, कानूनी जमानत मंजूर करने का अपीलार्थी का अधिकार बाद में फाइल किए गए आवेदन से अप्रभावित रहा था और मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट तथा उच्च न्यायालय दोनों ने अन्यथा अभिनिर्धारित करके गलती की थी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

15.4 इसी प्रकार, **भारत संघ** बनाम **निराला यादव**[1] वाले मामले में अभियुक्त ने तारीख 14 मार्च, 2007 को व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन फाइल किया । राज्य ने आतंकवाद निवारण अधिनियम (पोटा) की धारा 49(2)(ख) के अधीन समय का विस्तार करने की ईप्सा करते हुए तारीख 15 मार्च, 2007 को आवेदन फाइल किया । तथापि, दोनों में से किसी भी आवेदन पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया । इसी बीच, तारीख 26 मार्च, 2007 को आरोप पत्र फाइल किया गया । तारीख 3 अप्रैल, 2007 को विशेष न्यायाधीश ने दोनों आवेदनों पर विचार किया और आरोप पत्र फाइल करने के लिए भूतलक्षी प्रभाव से समय का विस्तार कर दिया । भारत संघ द्वारा यह दलील दी गई कि **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय के अनुसार जमानत का अजेय अधिकार पूर्णत: समाप्त हो गया था क्योंकि आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व जमानत पर कोई आदेश पारित नहीं किया गया था ।

इस न्यायालय ने यह पाया किया कि अभियोजन पक्ष ने 90 दिन की समाप्ति की तारीख से पूर्व समय का विस्तार करने के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया था । यह भी मत व्यक्त किया गया कि "यदि समय के विस्तार के लिए आवेदन फाइल किया गया होता, तो मामला पूरी तरह से भिन्न होता ।" न्यायालय ने अंततोगत्वा यह अभिनिर्धारित किया कि मजिस्ट्रेट व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन पर उसी दिन विचार करने के लिए आबद्ध था जिस दिन यह फाइल किया गया था ।

---

[1] (2014) 9 एस. सी. सी. 457.

इसलिए न्यायालय ने **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर अभियुक्त को व्यतिक्रम जमानत प्रदान करने वाले उच्च न्यायालय के आदेश को मान्य ठहराया ।

16. श्री लेखी ने **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां विहित अवधि के भीतर आरोप पत्र फाइल न किए जाने के आधार पर जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जाता है, वहां यदि अभियोजन पक्ष बाद में आवेदन पर विचार करने और अभियुक्त को छोड़ने से पूर्व आरोप पत्र फाइल कर देता है तो जमानत का उक्त अधिकार निर्वापित हो जाएगा । उसके पश्चात्, अभियुक्त को केवल गुणागुण के आधार पर जमानत पर छोड़ा जा सकता है । यद्यपि, **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट किया था, तो भी उन्होंने एक पूर्णत: विषम राय व्यक्त की थी, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

16.1 यह उल्लेख किया जाना होगा कि **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में विद्वान् न्यायाधीशों ने निष्कर्ष उस मामले के इन तथ्यों के आधार पर निकाला था कि आरोप पत्र अभियुक्त के अभिरक्षा में प्रतिप्रेषण के प्रथम आदेश से 90 दिन के भीतर फाइल किया गया था । व्यतिक्रम जमानत के अधिकार के निर्वापन पर की गई पूर्वोल्लिखित मताभिव्यक्तियां केवल इत्तिरोक्ति के रूप में एक परिकल्पित तर्क के रूप में की गई थीं और इसलिए ऐसा कोई आबद्धकारी पूर्व-निर्णय अधिकथित किया गया नहीं कहा जा सकता है । तथापि, किसी भी दशा में, इस बात को देखते हुए कि राज्य द्वारा इस विनिश्चय का सतत् रूप से अवलंब लिया गया है, हमें अवश्य यह स्पष्ट करना होगा कि हमारी सुविचारित राय में **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में की गई

---

[1] (2011) 10 एस. सी. सी. 445.

मताभिव्यक्तियां बृहत्तर न्यायपीठों द्वारा दिए गए निर्णयों में अधिकथित सिद्धांतों के विपरीत है ।

16.2 यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि **निराला यादव** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने पहले ही यह स्पष्ट किया है कि **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्ववर्ती समन्वय न्यायपीठ द्वारा, विशिष्ट रूप से विनिश्चय के पैरा 54 और 58 में, उल्लिखित सिद्धांत विधि की सही स्थिति का उल्लेख नहीं करते हैं । दोनों राय का अध्ययन करने के पश्चात्, हम यह निष्कर्ष निकालने और अभिनिर्धारित करने के लिए बाध्य हैं कि **निराला यादव** (उपर्युक्त) वाले मामले में उल्लिखित स्थिति सही है । हमारा यह निष्कर्ष है कि **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त यह राय कि जब एक बार आरोप पत्र फाइल कर दिया जाता है तो जमानत के अधिकार पर केवल गुणागुण के आधार पर विचार किया जा सकता है, **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निष्कर्षों के गलत निर्वचन पर आधारित है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय में प्रयुक्त "यदि पहले लाभ नहीं उठाया गया है" अभिव्यक्ति का न्यायालयों द्वारा, **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ सहित, यह अर्थ लगाने के लिए गलत निर्वचन किया गया है कि अभियुक्त व्यतिक्रम जमानत के अधिकार का लाभ केवल तभी उठा सकता है यदि उसे आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व वास्तव में छोड़ दिया जाता है । तथापि, **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने ऊपर यथा उल्लिखित अपने निष्कर्षों पर पहुंचने से पूर्व **संजय दत्त** (उपर्युक्त) वाले मामले में उल्लिखित सिद्धांतों को ठीक प्रकार से समझा था और विश्लेषण किया था ।

हमारी यह निश्चित राय है कि **उदय मोहन लाल आचार्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपनाया गया दृष्टिकोण एक आबद्धकारी पूर्व-निर्णय है । इसका अनुसरण बाद में **सय्यद मोहम्मद अहमद काजमी** (उपर्युक्त) वाले मामले में किया गया था । अतः, **प्रज्ञा सिंह ठाकुर** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 54 और 58 में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दी

गई इस आशय की इस राय को कि "भले ही इस आधार पर जमानत के लिए आवेदन फाइल किया जाता है कि 90 दिन के भीतर आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया था, किंतु आवेदन पर विचार करने से पूर्व और जमानत पर छोड़े जाने से पूर्व जमानत पर छोड़े जाने का उक्त अधिकार समाप्त हो जाएगा" या "केवल गुणागुण के आधार पर दी जा सकती है," अवश्य अनवधानता से दी गई राय अभिनिर्धारित की जानी चाहिए ।

16.3 अभी हाल ही में, **बिक्रमजीत सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] (2020 की दांडिक अपील सं. 667, तारीख 12 अक्तूबर, 2020) वाले मामले में इसी प्रकार के प्रश्न पर जो विधिविरुद्ध कार्यकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन में उद्भूत हुआ था, विचार करते हुए इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस विषय पर विभिन्न निर्णयों पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया :–

> "पूर्वोक्त विनिश्चयों के सिंहावलोकन से यह दर्शित होता है कि बशर्ते कि 90 दिनों की अवधि का पर्यवसान होने पर इससे पूर्व कि आरोप पत्र फाइल किया जाता है, व्यतिक्रम जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन किया गया हो (यहां तक कि यह आवेदन लिखित में करने की आवश्यकता नहीं है), तो व्यतिक्रम जमानत का अधिकार पूर्ण हो जाता है । ऐसा कोई क्षण नहीं है कि प्रश्नगत दंड न्यायालय या तो आरोप पत्र फाइल किए जाने से पूर्व ऐसे आवेदन का निपटारा न करे या ऐसा आरोप पत्र फाइल किए जाने से पूर्व गलत रूप से ऐसे आवेदन का निपटारा करे । बशर्ते कि उल्लिखित अवधि के पर्यवसान होने पर इससे पूर्व कि समय का 180 दिनों की अधिकतम अवधि तक आगे विस्तार किया जाए, व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन किया गया हो, तो धारा 167(2) के प्रथम परंतुक के अधीन व्यतिक्रम जमानत, अभियुक्त का एक अजेय अधिकार होने के कारण, प्रवर्तित हो जाता है और अवश्य मंजूर की जानी चाहिए ।"

---

[1] 2020 एस. सी. सी. ऑन लाइन एस. सी. 824.

बिक्रमजीत सिंह (उपर्युक्त) वाले मामले में का विनिश्चय यह सुनिश्चित करता है कि विशेष कानूनों के अधीन अभियुक्त की स्वाधीनता को कम करने के लिए प्रदत्त की गई कठोर शक्तियों का प्रयोग मनमानी रीति में नहीं किया जाना है । पुनरावृर्ति करते हुए, अवश्य इस बात पर बल देना होगा कि धारा 167(2) और इसके परंतुक का अधिनियमन करते समय विधानमंडल का सर्वोपरि ध्यान इस बात पर था कि अन्वेषण अवश्य तत्परता से पूर्ण किया जाना चाहिए और यह कि अभियुक्त को अयुक्तियुक्त रूप से दीर्घ अवधि के लिए निरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए और 1898 की संहिता के अधीन यही स्थिति विद्यमान थी । ऐसा करना अनुच्छेद 21 के अधीन राज्य पर अधिरोपित इस बाध्यता के अनुरूप होगा कि किसी व्यक्ति को उसकी दैहिक स्वतंत्रता से वंचित करने से पूर्व एक उचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रक्रिया का अनुसरण किया जाए ।

निष्कर्ष

17. प्रस्तुत मामले में, स्वीकृतत: अपीलार्थी-अभियुक्त ने अपनी गिरफ्तारी के 181वें दिन तारीख 1 फरवरी, 2019 को न्यायालय खुलने के ठीक पश्चात् आवेदन फाइल करके जमानत अभिप्राप्त करने के लिए अपने विकल्प का प्रयोग कर लिया था । यह विवादग्रस्त नहीं है कि लोक अभियोजक ने अपराध में अन्वेषण करने के लिए समय बढ़ाने की ईप्सा करते हुए तारीख 31 जनवरी, 2019 से पूर्व या तारीख 1 फरवरी, 2019 को 10.30 बजे पूर्वाह्न से पूर्व कोई आवेदन फाइल नहीं किया था । लोक अभियोजक ने जमानत के आवेदन पर बहस में उस दिन 4.25 बजे अपराह्न तक भाग लिया था जिस दिन यह आवेदन फाइल किया गया था । केवल उसके पश्चात् ही अपीलार्थी के विरुद्ध अतिरिक्त शिकायत दर्ज की गई थी । इसलिए, पूर्वोल्लिखित सिद्धांतों को लागू करते हुए, यह समझा जाएगा कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने जमानत के अपने अजेय अधिकार का लाभ उस क्षण उठा लिया था जिस क्षण अर्थात् तारीख 1 फरवरी, 2019 को 10.30 बजे पूर्वाह्न में उसने

जमानत पर छोड़े जाने के लिए आवेदन फाइल किया था और जमानत के आदेश के निबंधनों और शर्तों का पालन करने की प्रस्थापना की थी । वह बाद में अतिरिक्त शिकायत फाइल किए जाने पर भी जमानत पर छोड़े जाने का हकदार था ।

17.1 यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत मामले में राज्य/अन्वेषक अभिकरण ने जमानत पर छोड़े जाने के अभियुक्त के अजेय अधिकार को विफल करने के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए आवेदन पर अपीलार्थी की बहस समाप्त हो जाने के बाद अतिरिक्त शिकायत फाइल की थी । यदि ऐसी परिपाटी को अनुमति दी जाती है, तो धारा 167(2) के अधीन अधिकार निरर्थक हो जाएगा क्योंकि अन्वेषक अधिकारी अभियुक्त द्वारा अपने अधिकार का प्रयोग करने के समय तक अवरोध उत्पन्न कर सकते हैं और जैसे ही जमानत के लिए आवेदन पर निपटारे के लिए विचार किया जाता है तो सुविधापूर्वक अभियुक्त का नाम सम्मिलित करते हुए कोई अतिरिक्त शिकायत फाइल कर सकते हैं । ऐसी शिकायत मात्र अभियुक्त को अभिरक्षा में निरुद्ध रखने के लिए तुच्छ आधारों पर या प्रेरणात्मक हो सकती है, यद्यपि, हम प्रस्तुत मामले में अतिरिक्त शिकायत के गुणागुण पर टिप्पणी करने से प्रविरत रहते हैं । अपराध की गंभीरता और उपलब्ध साक्ष्य की विश्वसनीयता को विचार में लाए बिना, हमारे मत में, व्यतिक्रम जमानत के लिए आवेदन की मात्र परिवंचना करने के लिए अतिरिक्त शिकायतें फाइल करना एक अनुचित युक्ति है ।

अतः, हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय ने व्यतिक्रम जमानत के आधार पर अभियुक्त को छोड़े जाने के विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को अपास्त करके न्यायोचित नहीं किया था ।

17.2 हमने यह भी पाया है कि उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष पर पहुंचते समय मामले के गुणागुण में गलत रूप से प्रवेश किया था । उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कारण और निकाले गए निष्कर्ष अस्वीकार्य हैं ।

18. अतः, निष्कर्षतः

18.1 जब एक बार अभियुक्त धारा 167(2) के परंतुक के अधीन जमानत के लिए आवेदन फाइल कर देता है, तो यह समझा जाएगा कि उसने अन्वेषण के लिए अनुबंधित समय-सीमा की समाप्ति के पश्चात् प्रोद्भूत होने वाले व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने के अपने अधिकार का 'लाभ उठा लिया था' या प्रवर्तित कर लिया था । इस प्रकार, यदि अभियुक्त यथास्थिति, 180 दिन या विस्तारित अवधि की समाप्ति के उपरांत स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 36क(4) के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अधीन जमानत के लिए आवेदन करता है, तो न्यायालय को लोक अभियोजक से आवश्यक जानकारी प्राप्त करके, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, किसी अनावश्यक विलंब के बिना उसे अवश्य छोड़ देना चाहिए । ऐसी त्वरित कार्रवाई अन्वेषक अभिकरण द्वारा किए गए व्यतिक्रम की दशा में अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने के विधायी आदेश को विफल करने में अभियोजन पक्ष को निर्बंधित करेगी ।

18.2 व्यतिक्रम जमानत पर छोड़े जाने का अधिकार, यदि अभियुक्त ने ऐसी जमानत के लिए आवेदन किया है, जमानत के लिए आवेदन के लंबित रहते हुए ; या अभियोजन पक्ष द्वारा बाद में आरोप पत्र या समय का विस्तार करने की ईप्सा करते हुए न्यायालय के समक्ष कोई रिपोर्ट फाइल कर देने ; या उस अंतराल के दौरान आरोप पत्र फाइल किए जाने पर जब जमानत के लिए आवेदन नामंजूर करने पर दी गई चुनौती किसी उच्चतर न्यायालय के समक्ष लंबित है, प्रवर्तनीय बना रहता है ।

18.3 तथापि, जहां अभियुक्त व्यतिक्रम जमानत के लिए जब उसे यह अधिकार प्रोद्भूत होता है, आवेदन करने में असफल रहता है और बाद में कोई आरोप पत्र, अतिरिक्त शिकायत या समय का विस्तार करने की ईप्सा करते हुए कोई रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, तो व्यतिक्रम जमानत का अधिकार निर्वापित हो जाएगा । मजिस्ट्रेट,

यथास्थिति, मामले में संज्ञान लेने या अन्वेषण को पूर्ण करने के लिए और समय प्रदान करने के लिए स्वतंत्र होगा, यद्यपि अभियुक्त को फिर भी दंड प्रक्रिया संहिता के अन्य उपबंधों के अधीन जमानत पर छोड़ा जा सकेगा ।

18.4 धारा 167(2) के स्पष्टीकरण-I के फलस्वरूप न्यायालय द्वारा पारित व्यतिक्रम जमानत का आदेश होते हुए भी, अभियुक्त को वास्तव में अभिरक्षा से छोड़ा जाना जमानत प्रदान करने वाले सक्षम न्यायालय द्वारा पारित निदेशों पर समाश्रित होता है । यदि अभियुक्त न्यायालय द्वारा अनुबंधित समय के भीतर जमानत देने और/या जमानत आदेश के निबंधनों और शर्तों का पालन करने में असफल रहता है, तो उसका अभिरक्षा में निरोध जारी रहना विधिमान्य है ।

19. अत:, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जाती है । तथापि, हम अतिरिक्त रूप से यह निदेश देते हैं कि अपीलार्थी-अभियुक्त विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशानुसार प्रतिभूओं को प्रस्तुत करने के अलावा अपने पासपोर्ट का अभ्र्यापण करे, प्रत्यर्थी निदेशालय को रिपोर्ट करने का वचन दे जब अन्वेषण के प्रयोजनार्थ अपेक्षित हो और यह भी वचन दे कि विचारण न्यायालय की इजाजत के बिना चेन्नै शहर की सीमाओं से बाहर नहीं जाएगा । इससे न्यायालय की अधिकारिता से अपीलार्थी के फरार होने के बारे में कोई चिंता दूर होनी चाहिए ।

20. तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.